जयजयवन्ती

मनोवैज्ञानिक उपन्यास

रमेश वर्मा

यंग मैन एन्ड कम्पनी, दिल्ली

मूल्य	:	चार रुपये (४'००)
प्रथम संस्करण	:	जुलाई १९५८
प्रकाशक	:	यंग मैन एन्ड कम्पनी, दिल्ली-६
मुद्रक	:	डिलाइट प्रेस, चूड़ीवालान, दिल्ली

Music has wings...
I can't soar ; I can only indicate.

—E. M. Forster

बाबूजी की स्मृति को

आलाप

'जयजयवन्ती' का सही मूल्यांकन तो पाठक ही करेंगे पर एक उपन्यासकार के नाते कदाचित मेरी प्रतिक्रिया में प्रस्तुत कृति की कुछ विशिष्टताओं का दर्शन हो सके। श्री रमेश वर्मा की इस नवीन कृति को पढ़ कर मुझे हार्दिक संतोष हुआ है। एक साहित्यिक उपन्यास का निर्दोष निर्वाह कठिन कर्म है। सामान्य पाठक उससे ऐसी रचना की आशा रखता है जो कुतूहल का विवर्द्धन करती हुई उसके कथा रस को बढ़ाती चले। संक्षेप में कहें तो वह एक मनोरंजक कहानी चाहता है जिसमें उसके राग-विराग अपनापन पा सकें। पर जब वही कृति किसी

साहित्य अनुरागी के हाथ में पहुँचती है तो उसकी मांग पहले पाठक सी सरल नहीं होती। वह कथा के निर्वाह, चरित्रों के उन्मेष जैसी अनिवार्य बातों के अतिरिक्त उपन्यास के शिल्प, मूल मानवीय संवेदनों के उभार और एक ऐसे प्रयोजन की आशा रखता है जो कृति को विचार पूर्ण साहित्य की मर्यादा में बांध सकें। मैं समझता हूँ कि श्री रमेश वर्मा का 'जयजयवन्ती' ऐसा ही उपन्यास है जो सामान्य पाठक के परितोष के साथ साथ एक साहित्य समीक्षक की निर्मम कसौटी पर भी खरा उतरेगा।

कथा को बहुत ही स्थूल रूप में हृदयंगम करें तो विकल उपन्यास का प्रधान पुरुष है। अमल उसका स्नेही मित्र है और पूरक भी। एक तृतीय व्यक्ति, जो अमल, विकल की तरह शरीरवान नहीं, उसके जीवन में प्रवेश करता है। वह है राजीव, विकल के राग-तन्मय मानस द्वारा प्रसूत दिवंगत वायलिन-वादक की पुनः सशरीर उपस्थिति। यह इन्हीं तीन व्यक्तियों की कहानी है जिस में शमाबाई अर्थात् संध्या और विकल की पत्नी शैल महत्वपूर्ण योग देती हैं। संध्या कभी राजीव की प्रेयसी थी पर उपन्यास में रूपजीवा के रूप में आती है। विकल की दीदी और उसका पुराना नौकर 'काका' ये दोनों जीवन के ऐसे सरस स्रोत हैं जो उसे रमणीय बनाते हैं। विकल को विद्या और वायलिन से अनुराग है। अमल को विकल के अनुराग से अनुराग और राजीव को स्त्री-रूप

में जहाँ कहीं जो कुछ भी सुन्दर और ग्राह्य है उस सबसे घृणा। इस सामग्री से एक हृदयग्राही कहानी की रचना हो सकी है और जो पाठक इतना ही चाहते हैं उनके लिए उपन्यास इतना ही है। प्रवंचिता पत्नी और प्रियतमा उनकी सहृदयता को प्रबुद्ध भी रखती है।

पर साहित्य के पाठक के लिए यदि उपन्यास इतना ही है तो कुछ नहीं। यहीं श्री रमेश वर्मा की औपन्यासिक प्रतिभा का उन्मेष होता है। साहित्य के पाठक के लिए इस कथा में बहुत कुछ पठनीय और ग्राह्य मिलता है। मेरी अपनी व्याख्या के अनुसार अमल और राजीव विकल के व्यक्तित्व के ही दो रूप हैं। विकल अपने नाम के अनुरूप उस समन्वित व्यक्तित्व का वही रूप है जो अन्वेषणशील आत्मा के रूप में निरन्तर अप्राप्य की कामना में रत होने के कारण विकल ही रहता है। अमल उसके व्यक्तित्व का तुष्ट-पुष्ट और निर्विकार रूप है जिसका उसके मुख्य व्यक्तित्व पर प्रभाव राजीव के कारण क्षीण होता जाता है। राजीव विकल की वह वासना है जो विफलताओं में विभूत होकर जीवन की सुन्दरता और शांति पर व्यंग्य बन गई है। श्री रमेश वर्मा ने एक व्यक्तित्व के ऐसे तीन पक्षों को तीन चरित्रों के रूप में बड़ी ही सफलता के साथ प्रस्तुत किया है। यदि इस रूपक या व्याख्या का विस्तार किया जाए तो संध्या विकल का मोह है, शैल कर्तव्य, दीदी पुण्य और काका

संबल। मोह के वशीभूत हो वह कर्तव्य से विमुख हो उठता है। फलतः उसका पुण्य और जीवन संबल दोनों ही क्षीण हो उठते हैं।

सत्य को जानने के दो मार्ग हैं। एक सत्य का अपना, दूसरा झूठ का। अमल, दीदी, काका, शैल उसे उसी मार्ग की ओर प्रवृत्त करना चाहते हैं। पर राजीव उसे सत्य के दर्शन झूठ के मार्ग से बढ़ाकर कराना चाहता है। वह राजीव के प्रभाव को स्वीकार कर लेता है। फलतः झूठ के रास्ते से बढ़ते हुए जब वह सत्य को अधिगम करने योग्य होता है तो उसके पूर्ण साक्षात्कार के पूर्व ही उसकी जीवन शक्तियां क्षीण हो उठती हैं यही विकल की पराजय है और साथ ही इस दूसरे मार्ग के निषेध का कारण।

अब आप प्रस्तुत रचना को जिस दृष्टि से चाहें पढ़ें। मैं श्री रमेश वर्मा को उनके इस सफल कृतित्व पर बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उनके आगामी प्रयत्न इससे भी प्रखर होंगे।

२७-६-५८ भिक्खु

'जयजयवन्ती' के लेखन और प्रकाशन के बीच साढ़े चार लम्बे वर्षों का अन्तराल—मैं समझता हूँ, अत्यन्त शुभ—है। इस अवधि ने मुझे दृष्टि दी, परिप्रेक्ष्य दिया, जो वैसे संभव न था। उपन्यास की पांडुलिपि का पुनः आकलन हुआ, भावावेशजनित उपन्यास के अनेक अंश इस अल्प अवधि की कसौटी पर खरे नहीं उतरे और स्वयमेव छंट गए। इस प्रकार जिस रूप में कृति आपके सम्मुख पहुँच रही है, उससे मुझे पूर्ण संतोष है।

कथा उपन्यास का अनिवार्य अंग है और सहृदय पाठक का अधिकार। 'जयजयवन्ती' में कुतूहल-विवर्द्धिनी कथा है, परन्तु सहज मानवीय संवेदनों को उभारने और राग-विराग से तादात्म्य स्थापित करने की क्षमता भी इसमें

है या नहीं, यह जानने की स्वाभाविक कमज़ोरी—और अपना अधिकार—मुझमें है ; और इसका ज्ञान आप सब ही मुझे करा सकते हैं !

राष्ट्रभाषा के जाने-माने कथाकार और आकाशवाणी के मुख्य कार्यालय (नई दिल्ली) के असिस्टेंट स्टेशन डायरेक्टर श्री कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु' ने 'जयजयवन्ती' का 'अलाप' लिखकर मेरे प्रति अपने जिस सहज स्नेह का परिचय दिया है, उसके लिये आभार मानूंगा तो उन्हें क्लेश होगा और नहीं मानूंगा तो मुझे ; तब ?...तब यह समस्या यों ही रहने दी जाय, शायद कभी इसका हल स्वयं निकल आये !

यंग मैन एण्ड कम्पनी, दिल्ली के अध्यक्ष श्री तुलसीराम अरुण का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने 'जयजयवन्ती' के प्रकाशन में इतनी तत्परता दिखाई। उपन्यास के अनेक अंशों को दुबारा बोल कर लिखाया गया है, जिसका श्रेय श्री चमनलाल को है।

कृति प्रस्तुत है। सम्मत्याकांक्षी कथाकार विदा लेता है।

रमेश वर्मा

जे-३, कृष्ण नगर,
दिल्ली-६

जयजयवन्ती

●

विलम्बित	१७—११८
द्रुत	११६—२३२

रचना-काल

सितम्बर - दिसम्बर	१९५३
जनवरी - मार्च	१९५४
अक्टूबर - नवम्बर	१९५७

विलम्बित

रचना-काल

सितम्बर - दिसम्बर	१९५३
जनवरी - मार्च	१९५४
अक्टूबर - नवम्बर	१९५७

विलम्बित

घंटाघर की घड़ी ने 'टन-टन' करके ग्यारह का घंटा बजाया, तो विकल झुंझलाता हुआ भुनभुनाया : "साढ़े आठ बजे तक मैं ज़रूर आ जाऊंगा! अभी साढ़े आठ ही नहीं बजे आपके!"

खिसियाहट में बेला हाथ में उठाकर गले से टिकाया और दाहिने हाथ में गज सम्हालकर बड़ी कोमलता से उसे वाद्ययंत्र के तारों पर चलाया। अभ्यस्त हाथ स्थिर-मंद गति से चला और तारों ने मदिर-मधुर लय की सृष्टि की :

रे ग रे स, नि ध़ प़ रे...

लेकिन मन न लगा। गज और बेला परे रख दिए। तब बोला जैसे उसके सामने कोई मौजूद हो : "अब तुम्हीं बताओ, अमल, कब तक तुम्हारी राह देखूं! जानते हो, फिर भी नहीं आये..."

बेला फिर उठाकर उस पर गज रगड़ा :

रे ग रे स, नि ध़ प़ रे...

"नहीं, नहीं।" झुंझलाता हुआ बोला : "आज कुछ नहीं बजा पाऊंगा। कुछ नहीं..."

मेज पर दोनों चीज़ें रखकर खिड़की के पास पहुँचा। बाहर धीरे-धीरे पानी बरस रहा था। सीमेंट-कंकरीट से निर्मित काली सड़क पर जैसे अलग-अलग बूँदें पड़ रही थीं और किनारे खम्भों से लटकते लट्टुओं के प्रकाश में सड़क पारे के तल-सी चमक रही थी। उसने खिड़की से बाहर हाथ फैलाया। कुछ सेकेंडों में ही वह पानी से तर हो गया। तौलिया से उसे पोंछते हुये सोचने लगा कि पानी की वजह से ही अमल नहीं आ पाया। ठीक, यही बात है।...लेकिन पिछले चार बरसों में कभी ऐसा नहीं हुआ।...इसीलिए तो इतना बुरा लग रहा है...चार बरस ?...इतने समय से वह और अमल एक साथ बेला और बाँसुरी पर 'जयजयवन्ती' का रियाज़ किया करते हैं...हां, उससे पहले वह जरूर अकेले बजाया करता था लेकिन अब तो मानों अमल के बिना वह बजा ही नहीं पायेगा, जैसे आज...

उसी समय किसी ने बाहर से दरवाज़ा खटखटाया।

"अमल !"

दौड़कर उसने द्वार खोला। अब तक मूसलाधार पानी बरसने लगा था और अमल उसी में भीगता खड़ा था। अमल का हाथ पकड़कर उसने उसे भीतर खींच लिया, पीछे से पानी की बौछार भी अन्दर आ रही। दरवाज़ा ठीक से बन्द करके उसने अपने मित्र की तरफ़ देखा।

अमल आराम कुर्सी पर बैठ गया था। उसी कुर्सी के हत्थे पर बैठ कर विकल ने उसके हाथ पर अपना हाथ रक्खा और कुछ कहने ही जा रहा था, कि चौंक पड़ा : "अरे, तुम्हें तो बुखार है !"

अमल मुस्कराया।

"चलो उठो, ये गीले कपड़े बदल लो और लेट जाओ।"

अमल ने वही किया। सिराहने बैठ उसके बालों पर हाथ फेरता

हुआ विकल बोला : "इतना बुख़ार था तो बरसते पानी में क्यों आये भला ? कहीं न्यूमोनिया हो जाए तो ? चल दिये लाटसाहब !...कब से है बुख़ार ?"

"यूनिवर्सिटी में ही कुछ हरारत मालूम पड़ने लगी थी।" अमल ने कमज़ोर स्वर में जवाब दिया : "कमरे में पहुँचकर लेट गया तो फिर होश ही न रहा। आंख खुली तो सीधा भागा चला आ रहा हूँ।"

"क्यों ?"

"तुम्हें बेला नहीं बजाना है ?"

"एक दिन न बजाता तो मर जाता क्या ? चले आये जान देने ! यूनिवर्सिटी में क्यों नहीं बताया ? मैं तुम्हें घर जाने ही न देता !"

अमल के होंठ तनिक खुले, जैसे मुस्कराहट का हलका-सा भान दे गये।

एक छोटी ख़ामोशी के बाद विकल ही फिर बोला : "तुम ग्यारह बजे तक भी नहीं आये तो मैं तुम्हारे ऊपर झुंझला रहा था। बड़ा गुस्सा आ रहा था।"

वह रुक गया। अमल मुस्करा रहा था।

"इसमें मुस्कराने की क्या बात है ?" उसने पूछा।

"इसमें मुस्कराने की बात क्यों नहीं है ?" अमल ने कहा : "हम दोनों हमउम्र हैं, एक ही दर्जे के विद्यार्थी हैं, लेकिन फिर भी हम में कितना फ़र्क है। तुमने अभी तक कल्पनाकाश में विचरण करने के अलावा कुछ नहीं किया, और मुझे हर कदम पर कठोर, निर्दय वास्तविकता की ठोकरें खानी पड़ी हैं। फिर भी न जाने क्यों हम एक दूसरे के इतने पास आ गए ! न जाने किस ताक़त ने खींच कर हमें अभिन्न बना दिया !"

एक निश्वास छोड़कर वह चुप हो गया।

अमल ने आज तक कभी ऐसी बातें नहीं की थीं। चार साल से

ज्यादा समय गुज़र गया जब वे मिले थे। दोनों ने साथ-साथ बी० ए० किया, एम० ए० किया और 'रिसर्च' में नाम लिखा लिया। विकल ने कभी यह जानने की ज़रूरत नहीं समझी कि अमल कौन है, कहां का रहने वाला है, उसके पिता क्या हैं, आदि। वह सिर्फ़ एक सच्चे दोस्त का प्यार और विश्वास चाहता था और अमल ने उसे निराश नहीं किया।

चार साल पहले एक बार वह विकल को अपने कमरे में लिवा गया था। अहियापुर की एक संकरी गली की कोठरी थी वह। छोटा-सा टीन का बक्स, एक डेक्स, ज़मीन पर बिछी चटाई, बहुत सी किताबें-कापियां-कागज़, छोटा-सा एक लैम्प—यही अमल की सम्पत्ति थी। तभी विकल को महसूस हुआ था कि उसकी और अमल की स्थिति में कितना विरोध है, लेकिन एक क्षण को भी दिमाग में यह नहीं आया कि धन के कारण उसमें और अमल में अन्तर है। इसके विपरीत अमल के प्रति उसकी श्रद्धा, उसका स्नेह बढ़ ही गया। आर्थिक कठिनाइयां हमेशा जिस आदमी के पैर बांधने को तुली रहती हों और वह उन्हें हटा कर या झुकाकर आगे बढ़ता ही जाय, ऐसा आदमी श्रद्धा का पात्र नहीं तो और क्या हो सकता है ?

फिर उसे पता चला कि अमल बड़ी बढ़िया बांसुरी बजाता है। ललच उठा। आग्रह करके एक दिन उसकी बांसुरी सुनी। विभोर हो गया। 'भैरवी' के कारुण्य ने उसकी आंखों में आंसू ला दिये। स्वर डूब गया तो कहा : "अमल, मुझे बेला सिखा दो।"

"बेला ?" अमल को आश्चर्य हुआ।

"हां, मुझे कुछ-कुछ बजाना आता है।" विकल ने कहा : "तुम साथ में बांसुरी बजाओगे तो मैं भी सीख जाऊंगा। मैं रोज़ शाम तुम्हारे यहां आ जाया करूंगा।"

"तुम वहाँ क्यों आओगे ?" अमल ने उत्तर दिया : "मैं आ

जाऊंगा। हर शाम। आठ बजे।"

और चार लम्बे बरसों से अक्षुण्ण चला आया यह नियम आज टूटा था, वह भी इसलिए कि अमल को बुख़ार आ गया था।

"बेला नहीं बजाओगे, विकल ?"

"नहीं।"

"लेकिन मैं तो बाँसुरी बजाऊंगा। देखो न, लेता आया हूँ।"

अब पहली बार उसके गीले कपड़ों के पास रक्खी बाँसुरी पर विकल की दृष्टि पड़ी। बाँस का यह छोटा-सा टुकड़ा किसी के मुँह से लगकर कितना सम्मोहक हो उठता है, उसने सोचा, कि जब चाहे हँसा दे, जब चाहे रुला-रुला कर आँखों का पानी ही सुखा दे।

"नहीं अमल, तुम्हें बुख़ार है।"

"अरे चल, बुख़ार है।" अमल ने मीठी झिड़की दी : "एक गत बजाओगे तो यह बुख़ार उखार-कपूर की तरह उड़ जायेगा।"

"नहीं।"

"उठाओ बेला।"

"तुम मानोगे नहीं ? अच्छा ठहरो।" फिर पुकारा : "काका !"

काका—बेचू—विकल का बहुत पुराना नौकर था। उसके पिता यदि जीवित होते तो बेचू की उम्र के ही होते। बेचू ने विकल को बचपन से ही गोद में खिलाया था। इसीलिए विकल उसका नाम न लेकर 'काका' कहा करता था।

"हां, भैया !" बेचू फौरन आ खड़ा हुआ।

"देखो काका, अमल को आज दोपहर से बुख़ार है। तुम जाकर डाक्टर···"

"नहीं विकल, मुझे दवा की जरूरत नहीं। थोड़ी देर में···"

"तुम चुप रहो।" आंखें तरेर कर विकल ने अमल को देखा।

"और काका, दवा लेकर जल्दी लौटना।"

"हाँ, भैया !"

वह मुड़कर दरवाजे तक पहुँचा ही था कि विकल ने कहा : "बर-साती लेते जाओ काका, पानी खूब बरस रहा है।"

"छाता है मेरे पास, भैया..."

खूँटी पर टंगा बरसाती कोट उतार कर बेचू के कंधों पर डालते हुए विकल बोला : "तुम भी बस काका, ऐसे ही रहे।"

बेचू बाहर चला गया। विकल ने घूम कर अमल की ओर देखा। वह मुस्करा रहा था।

"अब बजाओगे ?" अमल ने पूछा।

"मानोगे नहीं ?" विकल बोला।

"नहीं।"

"तो बजाओ।"

अमल पलंग पर ही उठंग कर बैठ गया और बाँसुरी होंठों से लगा ली। विकल ने तारों पर गज फेरा।

कितनी देर तक वे स्वर-लहरियों में डूबे रहे, इसका उन्हें ज्ञान न रहा। होश में तो तब आये जब बेचू ने ज़रा ज़ोर से कहा : "भैया !"

विकल का हाथ रुक गया झटके से, और बाँसुरी अमल के होंठों से हट गई।

"कब से पुकार रहा हूँ," बेचू ने कहा : "पर तुम लोग तो इस दुनिया में थे ही नहीं। दवा ले आया हूँ। एक खुराक अभी देनी है, तीन कल दिन में। अमल बाबू, डाक्टर ने कहा है कि आप पूरा आराम करें। जरा भी काम नहीं।"

"अच्छा काका।" अमल मुस्कराया।

विकल ने हाथ बढ़ा कर शीशी ले ली। "एक गिलास पानी दो

काका, तो पिला दूँ।"

दवा पीने के कुछ मिनटों बाद अमल बोला : "उठाओ बेला।"

"क्यों?"

"जयजयवन्ती बजानी है।"

"नहीं, डाक्टर ने कहा है तुम्हें पूरा आराम मिलना चाहिए। अभी-अभी..."

"इसी लिये तो कहता हूँ विकल, कि इतने बड़े हो जाने पर भी तुम्हें अक्ल न आई," अमल मुस्करा कर बोला : "इन डाक्टरों के कहने पर चलने से कोई आदमी ज़िन्दा रह सकता है? ये अपने ग़रीब मरीज़ को साढ़े चार रुपये का 'मिक्सचर' थमाकर कहते हैं फल खाओ, दूध पियो, एक चम्मच कॉड लिवर आयल सुबह-सुबह लो। रोज कुआं खोदने पर भी पानी न पा सकने वाला आदमी क्या यह सब कर सकता है, तुम्हीं बताओ? विकल, उठाओ बेला। यह राग बजाओगे तो बुख़ार-उखार का नामोनिशां भी नहीं रह जाएगा।"

"नहीं, पौन बजे गए हैं। समय बहुत हो गया है।"

"वाह! यही तो अभ्यास का समय है। उठाओ बेला। और देखो, मेरे बुख़ार की फिक्र मत करो। ऐसे कितने ही बुख़ारों को झटका देकर अपने से अलग कर चुका हूँ। सवेरे तक यह भी दूर हो जायगा।"

विकल समझ गया कि अमल मानेगा नहीं, तो बोला : "अच्छा, उठता हूँ। लेकिन पहले कॉफ़ी तो पी लें।"

"हां, इसमें मुझे कोई एतराज नहीं।"

"काका!" विकल ने आवज दी।

"हां, भैया!" दूसरे कमरे से बेचू की आवाज आई : "चीनी मिला रहा हूँ। बस दो सेकेंड में लाया।"

एक मिनट के भीतर ही बेचू ने दो प्यालों में कॉफ़ी लाकर उनके सामने रख दी।

"तुम मन की बात कैसे समझ जाते हो, काका ?" विकल ने प्याला उठाते हुए कहा ।

बेचू मुस्कराया । बोला : "जब तुम इत्ते बड़े थे न, भैया, तब से मेरी गोदी में रहे हो ।" हाथ से उसने 'इत्ते बड़े' का भाव प्रदर्शित किया ।

"एक बज गया, काका," विकल ने कहा : "अब तुम सो जाओ ।"

"और तुम लोग ?" बेचू बोला : "अमल बाबू, डाक्टर साहब ने कहा है कि आपको पूरा आराम करना चाहिए ।"

"हां काका !" अमल ने कहा ।

"हम थोड़ी ही देर में सो जाएंगे, काका !" विकल बोला ।

बेचू चला गया । विकल ने दरवाजे बन्द करके खिड़कियां खोल दीं । पानी बरसना बन्द हो गया था, लेकिन ठंडी हवा तेज़ी से चल रही थी ।

खिड़की से झांक कर देखा । आकाश को पूरी तरह ढक लेने वाले बादल फट गए थे और कुछ तारे टिमटिमाने लग गए थे तथा पीला-पीला-सा जैसे बहुत दुर्बल चांद धरती पर फीकी चाँदनी फेंकने का उपक्रम कर रहा था । बिजली के बल्बों का प्रकाश हल्का-सा पड़ गया था और वृक्षों की पत्तियाँ पहले पानी और फिर चांदनी से स्नान करके अपनी प्रसन्नता 'मर-मर' स्वर में व्यक्त कर रही थी ।

"जी चहता है आज सारी रात बजाता रहूँ !" एक झटके से अमल की ओर घूम कर वह बोला ।

"तो बजाओ न," अमल ने उत्तर दिया : "मैं तुम्हारा साथ दूंगा ।"

आवेश में विकल ने बेला उठा लिया । अमल की बांसुरी होठों से जा लगी । 'जयजयवन्ती' के बोल वातावरण में भर गए :

स, रे ग म, ग म, रे ग, रे स, नि स, ध नि रे ग, स

राग की मधुरिमा में विकल और अमल खो गए, लीन हो गए। विकल भूल गया कि अमल को बुखार है। अमल भूल गया कि आठ घंटे तक वह बेहोश तपता रहा है। बस, विकल के दाहिने हाथ में थमा हुआ गज और बाएं हाथ की अंगुलियां बेला के तारों को कम्पित करते रहे और अमल के होंठ बांसुरी में प्राण फूंकते रहे और अंगुलियां उन प्राणों को संजीवनी प्रदान करती रहीं।...सम्पूर्ण वातावरण में राग भर गया। विकल के भावुक नेत्र मादक हो उठे और अमल के सदैव सजग नयन स्वप्निल। लगा, कोई अदृश्य संपेरा अपनी बीन के स्वर के जादू से उन्हें सम्मोहित करता जा रहा है और वे नागों की तरह झूम रहे हैं। लगा कठोर निर्दय धरती से कहीं ऊपर, बड़ी ऊँचाई पर कोई सागर है जिसकी हल्की-हल्की लहरों पर वे थपकियां खा रहे हैं। लगा, वे हमेशा बजाते रहें...हमेशा...और बेसुध रहें इस स्वरलहरी में...

और फिर द्रुत पर पहुँचने के बाद जब आखिरी बार गज तारों को छू सका और बांसुरी खामोश हुई तो दोनों की आंखें छलक पड़ीं।

"आज तो तूने कमाल कर दिया, विकल!" अमल ने उच्छ्वसित स्वर में कहा।

"तुम जो साथ हो!" विकल ने उत्तर दिया: "मैंने तो पहले ही कहा था कि अगर तुम मेरे साथ बांसुरी बजाओगे तो..."

"पागल!"

"तुम ने ठीक कहा, अमल!" विकल गम्भीर स्वर में बोला: "कभी-कभी लगता है यह राग मुझे पागल ही बना देगा।"

"बेवकूफी नहीं। उठाओ बेला।"

"फिर?" विकल को आश्चर्य हुआ। अमल को आज हो क्या गया है!

"हाँ! तूने ही तो अभी कहा था न कि रात भर बजाने का जी चाहता है।"

"वह तो मैंने यों ही कह दिया था।"

"लेकिन मैं यों ही नहीं कह रहा हूँ।"

एक बार फिर वातावरण में जयजयवन्ती थिरक उठी और उसमें दोनों मित्र डूब गए। कुछ समय इसी संगीतमय बेहोशी में बीत गया। एकाएक विकल से ग़लती हुई—वह 'कोमल ग' के स्थान पर 'कोमल रे' बजा गया। उसी क्षण उसे अपनी ग़लती का आभास हुआ और अमल रुक गया। उसने विकल की ओर देखा तो आंखें नीची किए हुए ही वह बोला: "बजाओ। अब गलती नहीं होगी।"

फिर स्वर उठा और पवन की लहरियों पर तैरने लगा कि विकल से फिर ग़लती हुई।

"क्या हो गया है, विकल?" अमल ने कहा।

कमरे में चारों ओर देखते हुए विकल बोला: "कुछ देखा तुमने?"

"क्या?"

"वहां। खिड़की पर।" उसने सामने की दीवार वाली खिड़की की ओर इशारा किया।

"क्या था वहां?" अमल ने उस ओर देखा।

"अब तो कुछ नहीं हैं," विकल ने उत्तर दिया: "जब मैं बजा रहा था तो मुझे उस पर कोई बैठा दिखा था। तभी मुझसे ग़लती हुई और वह उठ कर चला गया। तुमने नहीं देखा?"

"नहीं तो!"

"ताज्जुब है।"

अमल हंसा: "तुम्हें भ्रम हो गया होगा, विकल।"

"शायद भ्रम ही हो गया हो," विकल बोला: "पर वह आदमी!"

"कैसा था वह आदमी?"

"कुछ ठीक से नहीं देख पाया, पर काफ़ी लम्बा, गोरे रंग का और

स्वस्थ था और उसके चेहरे से जैसे तेज बरसता था।"

"आदमी-वादमी कोई नहीं था वहां!" अमल फिर हंसा : "कोई आकृति तुम्हारे दिमाग में बैठ रही होगी, वही दिखाई पड़ गई।"

"शायद!"

"शायद नहीं, यही बात है। लेकिन भूल जाओ उसे और अब सोने की कोशिश करो।"

"और बोला?"

"अब कल बजाएंगे।"

विकल बिस्तर पर लेट तो गया लेकिन उसकी आंखों के आगे बहुत देर तक यही कान्तिमान व्यक्ति दिखता रहा।
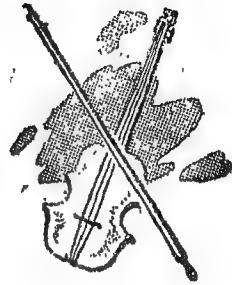
अमल का बुखार, जैसा उसने कहा था, दूसरे दिन सुबह उतर गया लेकिन विकल ने उसे अपने यहां से हटने न दिया। अमल ने जाने की बात चलाई तो विकल ने स्नेह से मनाकर और डांटकर चुप कर दिया। बेचू ने दिन भर अपने बच्चे की तरह उसकी देखरेख की।

शाम को विकल कुछ देर के लिये कहीं चला गया तो अमल ने बेचू से कहा : "तुम इतना प्यार क्यों करते हो, काका ?"

बेचू मुस्कराया, करुण मुस्कान, बोला : "बाप के दिल को अभी से समझ लोगे, अमल बाबू ? बेटे का सुख मुझे नहीं के बराबर मिला। पैदा होने के आठ दिन बाद वह चला गया। मानो उसकी मां भी सिर्फ़ उसी के लिये थी, सो थोड़े दिनों बाद उसने भी मुझसे नाता तुड़ा लिया। मैं अकेला रह गया। लेकिन प्यार की प्यास तो थी ही दिल में ! भीतर-भीतर तड़पता रहा। तब भैया ने वह इच्छा पूरी की। कभी मुझे नौकर की तरह नहीं माना। हमेशा 'काका' कह कर पुकारा। एक तरह से मेरा मन भर गया। फिर तुम आये। और हो ऐसे कि देखकर प्यार उमड़ता है..."

उसी समय बाहर से विकल की आवाज आई : "काका, यहां तो आओ ज़रा !"

"आया, भैया !"

उसी रात :

'जयजयवन्ती' बजाते हुए दो बज गए। पिछली रात की तरह दोनों फिर उस में खो गए। अमल और विकल दोनों को आश्चर्य था कि वे एकाएक इतना अच्छा कैसे बजाने लगे हैं।

सहसा विकल का हाथ ढीला पड़ गया। स्वर कराह कर रह गया। बांसुरी होठों से हटाकर अमल ने पूछा : "क्या है विकल ?"

मूक विकल ने खिड़की की ओर अंगुली उठा दी। अमल की आंखें घूमीं। खिड़की खुली थी, और कोई भी असाधारण बात न थी। उसने कहा : "क्या है वहां ?"

"तुम नहीं देख रहे हो ?" विकल ने आश्चर्य से कहा।

"किसे ? कौन है वहां ?"

"वही...कल वाला आदमी..."

"तुम सपना देख रहे हो क्या ?" अमल ने मुस्कराने की चेष्टा की : "वहां तो कोई नहीं है, विकल।"

"मैं नहीं तुम सपना देख रहे हो। देखो...देखो...अब तो मुस्करा भी रहा है..."

विकल की आंखें अपलक खिड़की की ओर निहार रही थीं। अमल आश्चर्य से कभी विकल को देखता, कभी खिड़की को। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि दो रातों से विकल को क्या हो गया है।

"कितनी गहरी आंखें हैं उसकी !" विकल जैसे स्वप्न में बोला : "कितनी काली !..."

"विकल !" अमल चीख़ पड़ा।

"देखो, वह मुझे बुला रहा है," विकल कहता गया : "ओह ! कितनी लम्बी, कितनी पतली अंगुलियां हैं उसकी !...हां, हां, आ रहा हूँ !"

उसने उस तरफ़ कदम बढ़ाया।

"विकल !"

अमल को उसकी इस दशा पर रोमांच होता आ रहा था।

लेकिन विकल को मानो उसकी आवाज़ सुनाई ही न पड़ी थी, वह कह रहा था : "क्या कहा तुमने ? मैं वेला अच्छी बजाता हूँ। बिल्कुल झूठ ! अभी तो मैं सीख रहा हूँ।"

"विकल !"

दौड़ कर अमल ने उसे पकड़ लिया और उसका शरीर एकबारगी झकझोर दिया।

"कौन है ? छोड़ो मुझे !" विकल बोला। फिर खिड़की की ओर दृष्टि डाली। वहां कोई न था।

"अमल !" वह अमल से लिपट गया।

अमल ने उसके सिर और बालों को थपथपाते हुए कहा : "क्या था, विकल ?"

विकल का चेहरा पसीने से तर हो गया था। सिर घुमाकर अमल को देखता हुआ बोला : "वहां पर क्या सचमुच कोई नहीं था, अमल ?"

"मुझे तो कोई नहीं दिखाई पड़ा।"

"पर मैंने उसे बिल्कुल साफ़ देखा। काली गहरी आँखें, लम्बी पतली अंगुलियाँ, आभायुक्त मुखमंडल सब कुछ साफ़ देखा। और उसकी मुस्कान..."

"विकल, तुम सो जाओ।"

"अच्छा !"

वह लेट गया। आँखें मूँद लीं। लेकिन उसके सामने वही व्यक्ति खड़ा रहा। काफ़ी देर तक नींद नहीं आई......कौन है वह ? कौन है ?

फिर न जाने कब नींद ने अपनी गोद में उसे सुला लिया।
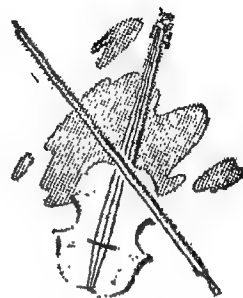
विकल खिड़की के पास, बेंत की कुर्सी पर बैठा पढ़ने की कोशिश कर रहा था, लेकिन किताब में डूब नहीं पा रहा था। बार-बार उसकी आँखों के सामने वही आदमी साकार हो उठता था—मादक आँखें, लम्बी कोमल अंगुलियाँ, आभायुक्त मुखमंडल।

कौन है वह आदमी?...क्यों आया था उसका बेला सुनकर, और आकर दोनों बार वहीं पर क्यों बैठा था?...और उसकी मुस्कान कितनी मधुर थी, कितनी प्यारी! जैसे प्रातः के कमल से उसे चुरा लाया हो!... परन्तु...परन्तु वहाँ कोई व्यक्ति था भी या नहीं? अमल तो कहता था, मुझे भ्रम हो गया है, कोई आदमी नहीं था!...क्या अमल ठीक कहता था?...पर आदमी होता तो अमल को भी अवश्य दिखलाई पड़ता, उसे तो दिखलाई पड़ा नहीं!...फिर?...नहीं, वह ज़रूर बैठा था, अपनी भावुक आँखों से बेला पर चलती मेरी अंगुलियों की ओर देखता हुआ... पर था कौन वह?...और कमरे में घुस कैसे आया?...क्या वह कोई प्रेतात्मा...? वह सहसा सिहर उठा।

कुछ देर बाद वह अपने में आया तो सोचने लगा।...प्रेतात्मा ही

हो तो क्या ? बेला सुनने ही तो आया था। बेला की तरंगों में डूबकर यदि उसे कुछ शान्ति, कुछ तृप्ति मिली, तो इसमें विकल की क्या हानि है ?...पर क्या वह बेला सुनकर ही आया था ?...

और एक नया विचार उसके मस्तिष्क में आया। वह बेला सुनकर ही आया था तो बजाने पर अब भी आ जायगा।...

आलमारी खोली, और 'केस' से यन्त्र निकाला। खिड़की पर बैठ यंत्र के तारों पर गज चलाया। 'जयजयवन्ती' वातावरण में थिरक उठी।

अमल उस समय वहां नहीं था, कि उसकी बांसुरी विकल के बेला का साथ दे सकती। विकल और बेचू के बहुत मना करने पर भी वह सुबह उठ कर चला गया था। विकल के बहुत अनुरोध और फिर ज़िद करने पर उसने सिर्फ़ इतना कहा था : "मुझे भय है, विकल, बहुत पास रहने से कहीं हमारे मधुर स्नेह में कड़ुवाहट न आ जाए!... पर मैं शाम को आठ बजे आ जाऊंगा।"

गज दाड़ाते समय एक क्षण के लिए विकल को अमल की याद आई, फिर वह राग में डूब गया। उसे लग रहा था कि अगर वह अपने संगीत के प्रभाव से उस व्यक्ति को (चाहे वह प्रेतात्मा ही क्यों न हो!) बुला पाया, तो अपनी अब तक की साधना सफल समझूंगा।... और वह राग में डूब गया।

ढाई घंटे तक लगातार बजाता रहा। पसीना-पसीना हो गया, और अन्त में हाथ ने ही चलने से इनकार कर दिया, फिर भी वह व्यक्ति न आया। आख़िरकार यंत्र रख दिया।

व्यक्ति नहीं आया।

चेहरे को हथेलियों से छिपाकर सोचने लगा कि क्या सचमुच दो दिन से उसे भ्रम हो रहा है ? क्या कोई आदमी कभी आया नहीं ? क्या अमल की ही बात ठीक है ?...परन्तु मादक आँखें, लम्बी पतली अंगुलियाँ, आभा-

युक्त मुखमंडल, मधुर स्वर !

उसी समय बेचू ने दौड़ते हुए कमरे में प्रवेश किया और हाँफते हुए कहा : "भैया, दीदी आई हैं।"

"दीदी !" विकल का मुख बाल-रवि-सा चमक उठा। बाहर की ओर भागा।

दीदी तांगे से उतर कर भीतर की ओर आ रही थीं, और तांगे वाला उनका सामान उतार रहा था।

"दीदी !" आतुर और स्नेह-आदर-मय स्वर विकल के कंठ से निकला, और वह उनके पैरों पर झुक गया।

"अच्छा तो रहा रे ?" दीदी ने उसे उठा कर, उसके कपोल पर प्यार से हल्की-सी चपत जड़ते हुए कहा : "बड़ा दुबला हो गया है।"

"मैं कभी आपको मोटा भी दिखलाई पड़ा हूँ, दीदी ?" विकल ने हंसते हुए कहा : "अभी तक कभी बीमार भी नहीं पड़ा, और बेचू काका के रहते खाना भी कम नहीं खा पाया—फिर भला दुबला कैसे होता ?"

दीदी हंसीं।

उसी समय बिस्तरा लेकर बेचू अन्दर आया और विकल के मुख से अपना नाम सुनकर मुस्करा कर बाहर चला गया।

"पढ़ाई कैसी चल रही है रे ?" दीदी ने प्रश्न किया।

"ठीक है, दीदी।"

"डाक्टर साहब तेरे काम से खुश हैं न ?"

"बहुत। कहते हैं मुझे अगले वर्ष तक 'डाक्टरेट' ज़रूर मिल जाएगी।"

"भगवान तेरी इच्छा पूरी करें !"

"पर दीदी, मुझसे भी अच्छा काम है मेरे एक दोस्त का।" विकल ने कहा।

"कौन है वह ?"

"अमल ।"

"जिसके विषय में तू अपने पत्रों में लिखा करता है ।"

"हां, वही । बड़ी मेहनत करता है वह । उसके जैसा पढ़ने वाला तो मैंने देखा ही नहीं ।"

"अच्छा !" फिर दीदी ने बात बदल दी : "और तेरा बेला क्या करता है आजकल ?"

उसके कुछ उत्तर देने के पहले ही अन्दर आ गया बेचू । बोला : "कुछ न पूछिये, दीदी, एक भैया पागल हैं, दूसरे अमल बाबू । दोनों जने बजाने लगते हैं, तो रात बीत जाती है, और ये बजाते ही रहते हैं । मना करता हूँ तो मानते नहीं, नहीं मना करता तो सिर पर चढ़ते हैं ।"

"क्यों रे ?" दीदी विकल की ओर देख कर हंसीं, और विकल मुस्कराया ।

"आते ही आते चुगली करने लगे, काका !" उसने कहा : "अरे, दीदी को थोड़ी देर आराम तो कर लेने दिया होता !"

"चुगली नहीं, दीदी, मैं तो सही बात करता हूँ," बेचू बोला : "अपना दोनों आदमी तो सोते ही नहीं, ऊपर से मुझे बूढ़े को भी रात दिन परेशान किये रहते हैं ।" कहता हुआ वह बाहर चला गया । उसका रोष कृत्रिम था, यह उसके स्वर से स्पष्ट था ।

"सच दीदी !" विकल सहसा भावाच्छादित होकर बोला : "बेचू काका अगर मेरे साथ न होते, तो मेरी न जाने क्या दशा होती !"

दीदी की आँखों में बेचू के लिये कृतज्ञता उमड़ पड़ी ।

दीदी विकल की बड़ी बहन थीं और उम्र में उससे करीब दूनी । उनके जन्म के बाद और भी भाई-बहन पैदा हुए, लेकिन विकल को छोड़कर और कोई जिया नहीं । विकल जब बहुत छोटा ही था, तभी मा नहीं रही

थीं, और जब कुछ और बड़ा हुआ तो पिता का साया भी हट गया। दीदी के ऊपर ही उसके पालन पोषण का सारा भार आ पड़ा। इसके अलावा सारा कारबार, जिसकी देखरेख अब तक पिता जी द्वारा होती थी, भी उन्हीं के हाथों में आ गया। और उन्होंने बड़ी कुशलता से उसे सम्हाला भी।

दीदी को पुरुष वर्ग से घृणा थी—केवल पिता और विकल को छोड़ कर प्रत्येक पुरुष से अतीव घृणा थी। क्यों यह घृणा उपजी, इसके भी कारण थे। उनके फूफा जी ने पैंतालीस वर्ष की पक्की उम्र में अपनी पैंतीस वर्षीया विवाहिता पत्नी और तीन बच्चों को छोड़कर एक बाज़ारू औरत से शादी कर ली थी। बहुत दिनों तक दाने-दाने को मोहताज रहने के बाद अन्त में बुआ जी ने प्राण छोड़ दिये थे, और नन्हें नन्हें बच्चों को पढ़ना-लिखना छोड़कर नौकरी करनी पड़ी थी। पिताजी ने ऐसे आड़े समय में अपनी बहन की सहायता करनी चाही, तो उन्होंने इनकार कर दिया। ऐसा करने से उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुँचती थी। मरते दम तक उन्होंने अपने भाई की ही क्या, किसी की भी सहायता स्वीकार नहीं की। और उनकी मौत के बाद उनके बच्चों ने उनका मस्तक नीचा नहीं होने दिया। यह सब उस पुरुष के कारण हुआ, जिसे न चाहते हुए भी उन्हें 'फूफा जी' कहना पड़ता था।

दीदी की मौसी की लड़की थीं कमला जीजी। उनका विवाह एक इलेक्ट्रिक इन्जीनियर के साथ हुआ। रिश्ता हो गया तो इन्जीनियर साहब उनके जीजा हो गये। वे भी एक ही नर-पिशाच थे। कमला जीजी जब तक जीवित रहीं जीजा जी ने उनका रक्त निर्दय होकर पिया। प्रातः पाँच बजे से लेकर रात बजे तक काम करवा-करवा कर उनका दम निकाल लिया। अन्त में वे तपेदिक से बीमार पड़ीं, तो मर कर ही चारपाई से उठीं। इतना ही नहीं, एक बार बीमारी की दशा में जीजा जी ने दीदी के नारीत्व के साथ खिलवाड़ करने का भी साहस किया पर उनके कमजोर

हाथ एक का चांटा खाकर ही उनके होश ठिकाने आ गये। पर उसके बाद भी जब-जब उन्हें समय मिला, हाथ पांव मारने से बाज़ नहीं आये, भले ही सफल न हुए हों।...और ऐसे व्यक्ति को घृणा करते हुए भी उन्हें सगा कहना पड़ता था।

इसी तरह की कितनी ही घटनायें दीदी के जीवन में घट चुकी थीं, और पुरुष जाति से ही उन्हें अतीव घृणा हो गई थी। मन ही मन वे सोचने लगी थीं, कि वे कभी किसी पुरुष की चेरी नहीं बनेंगी। फिर पिता जी की मृत्यु हो गई, और घर-बाहर का सारा भार उन्हीं के कंधों पर आ रहा। लोगों ने चरित्रहीना कहकर उन्हें कुप्रसिद्ध करना प्रारम्भ कर दिया, पर उन्होंने किसी के कहने की ज़रा भी चिन्ता न की। उन्होंने पक्का इरादा कर लिया था कि वे विवाह न करेंगी, और कोई उन्हें उससे डिगा न सका। उन्होंने अपना सारा प्यार विकल के ऊपर उड़ेल दिया और विकल उनके स्नेह से पुष्ट होता रहा, बढ़ता रहा। जब वह बड़ा हुआ और उसे पता चला कि उसकी स्नेहमयी दीदी ने उसके लिये अपने जीवन को किसी प्रकार का सुख नहीं दिया, तो असीम श्रद्धा और आदर से उसका सिर नत हो गया। वह सोचने लगा कि जन्म-जन्म तक उनकी सेवा करके भी उनके ऋण से उऋण होना संभव नहीं।

खाना खाने के बाद दीदी जब आराम करने को चारपाई पर लेटीं तो उन्होंने कहा : "मैं एक खास काम से आई हूँ यहाँ, विकल!"

"क्या दीदी, ?"

विकल उनके पास ही कुर्सी पर बैठा था, बेचू दीदी के पैर दबा रहा था।

"पहले क़सम खा कि मेरी बात मानेगा।"

"पर मैंने आपकी बात कब नहीं मानी है, दीदी?" विकल ने उत्तर दिया।

"नहीं मानी है," दीदी ने कहा : "इसलिए तो कहती हूँ, कसम खा!"

"पहले बात तो बताइए।"

"नहीं, पहले कसम खा।"

"अच्छा, दीदी, अच्छा!" मुस्कराकर विकल बोला : "मैं आपकी बात आंख मूंद कर मान लूंगा।"

"आज रात हमें बाँदा चलना है," दीदी ने कहा।

विकल चौंक पड़ा।

"क्यों?"

"बड़ा भोला है न, जो इतना भी नहीं समझता," दीदी हंसीं, तो उसमें बहुत-सा प्यार और तनिक-सी शरारत थी : "शैल की गोद भरनी है।"

विकल के मुख पर हल्की-सी खुशी की ललाई आ गई।

"मैं भी चलूँगा, दीदी!" बेचू यह सुन कर खिलकर बोला : "मेरे बिना यह रस्म पूरी नहीं हो सकती।"

"हाँ, काका!" दीदी ने बेचू की ओर देखते हुए कहा : "तुम नहीं रहोगे, तो इतना बड़ा ब्याह क्या मैं रचाऊंगी?"

बेचू कुछ उत्तर न दे सका। हर्ष से कंठावरोध हो गया।

"इतनी जल्दी क्या है, दीदी?" धीमे स्वर में विकल ने विरोध करना चाहा : "एक साल की ही तो बात और है। पढ़ाई खत्म हो जाए..."

"तेरी पढ़ाई ज़िन्दगी भर चलती रहे, तो ज़िन्दगी भर तेरी शादी ही न हो," दीदी ने कहा : "और वह बेचारी वहाँ बैठी-बैठी तेरे नाम को रोती रहे! ना, बाबा, ना, यह बहाना बहुत दिनों चल चुका, अब नहीं चलने का। आज रात तुझे चलना पड़ेगा, और अगली सात तारीख़ को शादी हो जाने के बाद ही तू यहाँ लौट सकेगा।"

"दीदी!"

"दीदी-वीदी कुछ नहीं! मुझे मालूम है तेरी पढ़ाई का नुकसान

नहीं होगा।" ज़रा रुक कर बोलीं : "अब और बातें बनाएगा, तो मार पड़ेगी। आया समझ में ?"

विकल अपने कमरे में चला गया।

"दीदी," पाँव दबाता हुआ बेचू बोला : "भैया के ब्याह में ऐसी चीज लूँगा, जैसी कभी किसी को न मिली हो।"

"सब तुम्हारा ही तो है, काका !"

बेचू की आँखें फिर तरल हो उठीं।

शैल !

अपने कमरे में आरामकुर्सी पर लेटे विकल की आँखों के सामने चाँदनी-सी धवल और कुमुदिनी-सी सुकुमार शैल का चित्र खिच गया। बादाम के आकार के कजरारे नयन, पंखुरियों से रक्तिम अधर, मोतियों की माला-सी शुभ्र दन्त पंक्तियाँ, और कोयल-सी मधुर वाणी !

वह दीदी के सामने से भाग आया था, उसके मानस में कैसा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था ! उसे लगा, कितने शीघ्र वह शैल के पास पहुँच जाए ! सहसा भान हुआ कि अब वह शैल के बिना एक पल भी नहीं रह सकेगा ! आश्चर्य हुआ कि अभी तक कैसे वह उसकी अनुपस्थिति में रहता चला आया है।

उसके मस्तिष्क में चार वर्ष पहले की वह शाम साकार हो उठी, जब वह पहली बार शैल से मिला था। बी० ए० पढ़ने के लिए वह इलाहाबाद जाने वाला था कि दीदी के साथ एक प्रौढ़ा और एक भोली-सी सुकुमार लड़की ने कमरे में प्रवेश किया। प्रौढ़ा को हाथ जोड़ कर उसने नमस्ते किया, तो उन्होंने कहा : "जीते रहो बेटा !" लड़की ने 'नमस्ते' उससे किया, तो उसने भी उत्तर दिया।

"यही है मेरा भइया, विकल," दीदी ने प्रौढ़ा से कहा : "इन्टरमीडियेट पास कर चुका है, अब बी० ए० पढ़ने इलाहाबाद जा रहा

है।" फिर विकल की ओर मुड़कर बोलीं : "इन्हें पहचानता है रे ?"

विकल ने बड़े संकोच से नकारात्मक सिर हिला दिया।

मुस्करा कर दीदी बोलीं : "बाँदा के बाबू आनन्द नारायण वकील साहब का नाम सुना है कभी ?"

"हाँ, हाँ !" विकल को अब प्रौढ़ा का परिचय जानने की आवश्यकता न थी। उसने फिर हाथ जोड़े। मुस्करा कर प्रौढ़ा ने प्रत्युत्तर दिया।

"और यह शैल, आपकी लाड़ली बेटी !" दीदी ने पहले शैल और फिर प्रौढ़ा की ओर संकेत किया। वैसे ही नमित रहने वाली शैल और नम गई।

"तो बेटा, तुमने इलाहाबाद में दाख़िला कराया है ?" श्रीमती आनन्द नारायण ने जानते हुए भी बात करने की गरज़ से कहा।

"जी हाँ।" विकल ने उत्तर दिया।

"वहां बोर्डिंग में रहोगे ?"

"नहीं, दीदी ने एक छोटा सा मकान ठीक कर दिया है। बोर्डिंग में मुझ से पढ़ा नहीं जायेगा।"

"देखो बेटा, शैल भी इन्टरमीडियेट पढ़ने इलाहाबाद जा रही है। क्रास्थवेट कालेज में नाम लिखवा दिया है। वहीं बोर्डिंग में रहेगी। कभी-कभी जाकर हाल-चाल पूछ लिया करना और किसी चीज़ की ज़रूरत हो, तो इन्तज़ाम कर दिया करना। कुछ तकलीफ़ तो ज़रूर होगी ..."

"इसमें तकलीफ़ क्या," उसने उत्तर दिया : "मैं ज़रूर देखने जाया करूंगा।"

उसने कनखियों से शैल की ओर देखा। सिर नीचे किये हुए वह भी उसी की ओर देख रही थी। सहसा दृष्टि मिलते ही उसने आंखें नीची कर लीं।

वह इलाहाबाद चला आया। चौदह जुलाई को विश्वविद्यालय खुल

गया। दो सप्ताह पश्चात् पढ़ाई भी प्रारम्भ हो गई। इन सारे दिनों वह सोचता रहा कि किसी दिन जाकर शैल से मिल आये, परन्तु इतना साहस एकत्रित न कर सका। आखिर, जब अगस्त का पहला हफ्ता भी बीत गया, तो उसने शैल के यहाँ जाने का इरादा कर ही लिया। उसके बोर्डिंग में पहुँचकर दाई से अन्दर खबर भिजवाई। पूरे पन्द्रह मिनट बाद शैल बाहर आती दिखलाई पड़ी। उसने देखा कि शैल बहुत खुश है और अनुभव किया कि एक अनजानी पुलक से खुद उसका मानस भी भरता जा रहा है।

पास आकर शैल ने हाथ जोड़े, तो उसने भी प्रत्युत्तर दिया। दोनों सामने के लॉन पर पड़ी बेंचों में से एक पर बैठ गये। वह चुप था और शैल भी चुप थी। रास्ते भर वह सोचता गया था कि शैल से मिलने पर वह इस तरह बात शुरू करेगा, उस तरह करेगा, पर वहां पहुँचकर सब कुछ भूल गया। शैल ने भी अपनी ओर से बात शुरू नहीं की। आखिर में वह बोला : "कई दिनों से आप से मिलने को सोच रहा था ···।"

शैल के अधरों पर एक हल्की सी मुस्कान उसे दिखलाई पड़ी। बोली : "इतनी जल्दी आने के लिए धन्यवाद !"

विकल को यह शिकायत बड़ी अच्छी लगी।

"पर मैं सोचता था कैसे मिलूँ ?" अनजाने में सच बात उसके मुँह से निकल गई।

"जैसे आज आ गये।" वह हंसी।

वह मुस्कराया : "अब तरकीब समझ में आगई है।"

तब कुछ देर तक रुक-रुक कर बातें हुईं, परिवार की, पढ़ाई-लिखाई की। और फिर खामोशी छा गई। तब एकाएक विकल बोला : "तो मैं अब चलूँ। फिर आऊँगा।"

"कब ?" सहसा शैल के मुँह से निकला था।...

फिर शैल की कितनी ही तस्वीरें जल्दी-जल्दी उसके मस्तिष्क की

आँखों के सामने आई—या शायद तस्वीर एक ही थी, बस उसमें रोज़-रोज़ नये आकर्षक रंग ज़रूर भरते गये थे।···

विकल की वर्षगांठ। शर्माते हुए शैल का उसे किताबों का एक बंडल भेंट करना और दीदी का शैल को अपने अंक में लेकर कहना, "गुड़िया"...छुई मुई-सी सिकुड़ी शैल...कपोलों पर ईंगुर...

यमुना का किनारा। घाट के एक पत्थर पर बैठे शैल और विकल। दोनों की आंखों में रोशनी की किरणें !...

और अब जीजी उनकी मधुर कल्पनाओं को साकार करने आई हैं। विकल का शरीर सिहर उठा, और मानस अनुभूति से भर उठा...

शाम को सदा की तरह अमल आया। विकल ने दीदी से उसका परिचय कराया। फिर दोनों ने 'जयजयवन्ती' बजाकर जीजी को खुश कर दिया।

"तुझसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई, अमल !" दीदी ने स्वाभाविक स्नेह-मय स्वर में कहा।

अमल ने उनकी ओर देखा। सहसा कुछ कह न सका।

दीदी ने फिर कहा : "पर संयोग तो देख कि चार साल से तू विकल के साथ है, पर तुझसे मिलने का अवसर आज पा सकी हूँ।"

अमल को लगा, उसे कुछ उत्तर देना चाहिये। बोला : "हां, दीदी, यह संयोग ही है। आपसे मिलने की मेरी कितनी इच्छा थी, कि मैं ही जानता हूँ।"

"तो कानपुर क्यों नहीं चला आया ?"

दीदी के इस प्रश्न का उत्तर अमल कुछ रुकने के पश्चात् ही दे पाया : "कुछ ऐसे झंझट लगे रहते हैं, दीदी, कि छुट्टी ही नहीं मिल

पाती।"

"हां, रे!" दीदी के स्वर में जैसे मधुर उपालम्भ था: "दीदी से मिलने में भी इतनी झंझटें होतीं हैं? मन ही नहीं होगा तेरा!"

"नहीं, नहीं, दीदी..."

"अच्छा, छोड़ अब इसे!" दीदी ने बात बदल दी: "विकल ने तुझे बताया है, कि मैं क्यों यहां आई हूँ?"

"नहीं तो।"

"अगली सात तारीख़ को इसकी शादी है..."

"क्यों रे!" अमल ने विकल की बगल में हलका-सा धक्का लगाया: "इतनी बड़ी बात, और बताया तक नहीं!"

विकल ने मुस्कराना चाहा, पर मुख पर आह्लाद भरे संकोच की लालिमा बिखर कर रह गई।

"कल सवेरे हम लोग बाँदा जा रहे हैं," दीदी ने ही आगे कहा: "अब यह शादी के बाद ही लौट सकेगा। तू तो आयेगा न, विवाह में?"

"यह भी कोई पूछने की बात है?" अमल ने उत्तर दिया।

खाना खाने के बाद अमल जाने लगा, तो विकल उसे बाहर तक भेजने गया।

फुटपाथ पर खड़े होकर अमल ने पूछा: "कौन हैं मेरी भावी-भाभी—शैल जी?"

"हां!"

"बधाई! शुभकामनाएं!" अमल ने कहा। अपनी खुशी में विकल को अमल का स्वर हमेशा की तरह स्नेहमय ही मालूम पड़ा। कोई अन्तर नहीं!

"आयेगा तो?" विकल ने पूछा।

"ज़रूर!"

अमल चला गया, तो वहीं खड़ा-खड़ा विकल अतीत और भविष्य

के सुनहरे स्वप्नों में तिरोहित हो गया।

कितनी देर खड़ा रहा, वह नहीं जानता। असल में उसे होश ही नहीं था। होश तो उसे बेचू काका की आवाज सुनकर आया: "वहां खड़े क्या कर रहे हो, भैया?" झटका लगा। स्वप्न सहसा टूट गया। जल्दी जल्दी चलकर अन्दर पहुँचा। दीदी को नींद आ गई थी। वह बिस्तर पर लेटकर पढ़ने की कोशिश करने लगा।
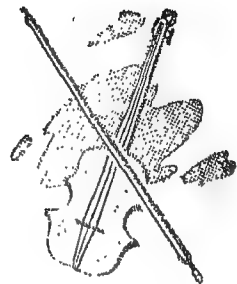
चौंक कर विकल उठ बैठा और 'बेडस्विच' दबाता हुआ बोला : "कौन है ?"

उसके प्रश्न का उत्तर दिया निस्तब्धता में उत्पन्न होने वाली गूँज ने।

स्लिपर पहन कर सारा घर छान आया। बेचू काका अपने बिस्तरे और दीदी अपने पलंग पर गंभीर निद्रा में निमग्न थे। बाहर आकाश में बादल उमड़ रहे थे, और तेज़ सर्द हवा चल रही थी। लौट कर वह फिर पलंग पर लेट गया। बत्ती बुझा दी।

घंटाघर की घड़ी ने एक का घंटा बजाया।

अंगड़ाई लेकर उसने करवट बदली, और आँखें मूंदीं। उसी क्षण किसी स्वर ने कहा : "आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे ?"

रोशनी जला कर विकल ने फिर अपने चारों ओर देखा, कोई न दिखलाई पड़ा। वह फिर लेटने ही वाला था कि वही स्वर सुनाई पड़ा : "आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे ?"

विकल की दृष्टि खिड़की पर पड़ी। पिछली दो रातों से दिखलाई

पढ़ने वाला व्यक्ति आज भी वहीं बैठा था। साहस करके विकल उसके पास जा खड़ा हुआ, और बोला : "कैसी तृषा ?"

"तुम्हें नहीं मालूम ?"

"नहीं।"

व्यक्ति के मुखमंडल पर जैसे करुणा की छाया आई, बोला : "तुम रोज़ ही तो मेरी तृषा बुझाते हो, और आज कहते हो तुम्हें मालूम ही नहीं ?"

सहसा विकल को याद आया कि यह व्यक्ति हर रात केवल उसका बेला सुनने ही तो आता है। शायद यही उसकी तृषा है। बोला : "बेला सुनोगे ?"

व्यक्ति का मुख चमक उठा, : "हाँ, जयजयवन्ती।"

"अच्छा, बैठो, अभी सुनाता हूँ।"

उसने बेला उठाया, और लगभग एक घंटे तक जयजयवन्ती वातावरण में तैरती रही। बन्द किया तो व्यक्ति बोला : "तुम बहुत अच्छा बजाते हो।"

"नहीं।"

"हाँ! तुम बहुत अच्छा बजाते हो। तुम्हारे संगीत में डूब कर भूत-भविष्य-वर्तमान सभी भूल जाता हूँ।"

"आप बढ़ा कर बात कर रहे हैं।"

"नहीं, विकल, मैं बढ़ाकर बातें नहीं करता।"

"आप मेरा नाम जानते हैं ?"

वह मुस्कराया, बड़ी मोहक मुस्कान थी उसकी : "हाँ, मैं तुम्हारा नाम जानता हूँ।"

कुछ क्षण विकल उस रहस्यमय आदमी की ओर देखता रहा, तब बोला : "आप मुझे पहचानते हैं ? क्या मैं आपका परिचय पूछने की धृष्टता कर सकता हूँ ?"

व्यक्ति फिर मुस्कराया, परन्तु उसकी इस बार की मुस्कान करुण थी : "मेरा परिचय ? मुझे राजीव कहते हैं।"

"लगता है, आपको भी बेला से बहुत प्रेम है।"

"हाँ, पर मैं बजा नहीं पाता।"

"आप रहते कहाँ हैं ?"

"यहीं।" वह मुस्कराया : "क्या करोगे तुम यह पूछ कर ? क्या कभी मेरे घर आओगे ?"

"खुशी से। आप बता भर दीजिए।"

वह मुस्कराया : "बता दूंगा।"

"पर आप इस कमरे में कैसे आ जाते हैं ? दूसरे के घर में रात को दो बजे घुसते आपको डर नहीं लगता ?"

वह हंसा : "नहीं। तुम्हारा बेला इतना आकर्षक है कि किसी और बात का ख्याल ही नहीं रहता।"

"मैं तो इस घर में चार साल से हूँ। आप परसों रात से पहले कभी नहीं आए ?"

"हाँ, तब तुम्हारी कला में इतना आकर्षण नहीं था।"

"पर मैंने सवेरे भी तो बेला बजाया था, उस समय आप क्यों नहीं आए ?"

"काम में लगा था, वरना ज़रूर आता।"

"और अभी मेरे संगीत में इतनी शक्ति नहीं, कि वह आपको काम से उठाकर यहा खींच लाता—है न ?"

"हाँ—पर इसमें सब दोष तुम्हारा नहीं है। तुम्हारा बेला भी तो उतना अच्छा नहीं।"

"लेकिन इससे अच्छा बेला संसार में कहीं नहीं बनता, कहीं नहीं मिलता।"

"अब नहीं मिलता होगा, पहले तो मिला करते थे।"

"आप मुझे दिलवा सकते हैं ?"

"कोशिश कर सकता हूँ।"

"मैं आपका आजीवन आभारी रहूँगा।"

"अच्छा, तो मैं अब चलूं। फिर जब बजाओगे तो आऊँगा।"

"अच्छा !"

सहसा विकल को याद आया कि राजीव को बता दे कि लगभग एक माह के लिए वह बाहर जा रहा है, इस कारण अब लौटने पर ही उससे मिल सकेगा। वह मुड़ा, परन्तु राजीव खिड़की पर न था। द्वार खोल कर बाहर गया, सड़क पर देखा, दोनों ओर दूर तक किसी आदमी की आकृति न दिखलाई पड़ी।
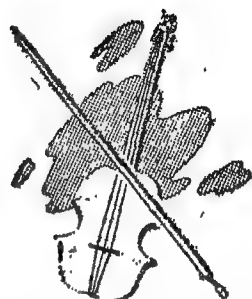
सात जनवरी आई और इतना परिवर्तन करके चली गई कि विकल और शैल एक ऐसे बंधन में बंध गये जो मृत्यु के बाद भी न टूटने वाला कहा जाता है।

तीन सुनहरे दिन और रुपहली रातें पलक झपकते बीत गईं। किसी आदमी को इतना सुख भी मिल सकता है, यह विकल को अभी पता लग सका। दीदी...बेन्चू काका...अमल...और.. शैल...क्या इन सभी के स्नेह के बिना भी विकल वही हो सकता था जो आज है?...

सहसा मस्तिष्क में एक झटका-सा लगा। कितने दिन हो गए उसे बेला बजाये हुये!...अब भला इस बेला ने भी उसके जीवन को कम प्रभावित किया है क्या?...और एक वह है कि लगभग एक महीने से उसने उसके तारों को छेड़ा तक नहीं...कभी वह रात-रात भर बजाता रहता था...और जब वह बजाता था राजीव उसके राग से खिंचा हुआ आ जाता था और विभोर होकर सुनता रहता था, जब तक कि वह गज फेरना बंद न कर देता। कहता था, उसे जयजयवन्ती पर पूरा अधिकार हो गया है। क्या सचमुच?...और उसकी अनुपस्थिति में भी वह घर

आता होगा और विकल को न पाकर व्याकुल होकर कहता होगा : "आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे ?"

और वह व्यथित हो उठा। लगा उसके पंख होते तो वह उड़कर जार्जटाउन पहुँच जाता और राजीव से माफी माँगने के बाद...

दुमंजिले पर बने बरामदे में पड़ी आराम कुर्सी पर बैठ गया। मन उसका बहुत व्यथित हो उठा था। रह रह कर कानों में वही स्वर सुनाई पड़ता था...आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे ?...आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे ?...

नौ बज रहे थे। बरामदे की बत्ती नहीं जलाई गई थी, और विकल ने भी स्विच ऑन नहीं किया।

"अरे, आप यहाँ अंधेरे में क्यों बैठे हैं ?"

स्वर सुन कर वह चौंक पड़ा। उसी समय 'खट्' की आवाज़ के साथ बरामदे में रोशनी बिखर गई।

सिर उठाकर उसने शैल की ओर देखा। धीरे धीरे चलकर वह उसके पास जा खड़ी हुई, और उसके सिर पर हाथ रखकर बोली : "तबियत ठीक नहीं क्या ?"

"नहीं तो, बिलकुल ठीक है।"

"फिर इतने चिन्तित से अंधेरे में क्यों बैठे थे ? मुझसे कोई गलती हुई ?"

"नहीं नहीं," विकल ने जल्दी से उत्तर दिया : "यों ही याद आ गई थी।"

"किसकी ? अमल जी की ?"

"नहीं, इलाहाबाद की, जार्जटाउन वाले घर की, अपने बेला की।"

"बेला तो आप लेते आये हैं न ?"

"हां।"

"तो बजाइये न, शायद यह उदासी दूर भाग जाय।"

"शायद ! उठा लो आलमारी से।"

शैल ने आलमारी से बेला उठा लिया।

"पर आपके साथ बांसुरी कौन बजायेगा—अमल जी तो चले ही गये ?" शैल ने कहा।

"अकेले ही बजाऊंगा। अमल नहीं रहेगा, तो क्या कुछ कर ही नहीं सकूंगा ?"

गज बेला के तारों पर पहले हौले से और फिर तेज़ी से दौड़ने लगा। बांये हाथ की अंगुलियां गतिशील हो उठीं। 'जयजयवन्ती' सुनकर शैल का मन चंचल हो उठा, और विकल उसमें डूबकर रह गया। इसी प्रकार कितने ही मिनट सरक गये। सहसा विकल को लगा, कोई उसके कानों में कह रहा है, "आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे ?"

हाथ हिल गया। राग टूट गया। शैल की तन्द्रा को झटका लगा। विकल की आंखें चहुँ ओर निहारने लगीं।

"क्या हुआ ?" शैल ने पूछा।

"कुछ नहीं।" विकल कुछ हकलाया।

विक्षिप्तों के समान अपने इधर-उधर देखते देखकर शैल विकल से बोली : "कौन है यहां ?"

"कोई तो नहीं।" विकल ने कहा, फिर तनिक देर बाद अपने माथे पर हाथ फेरता हुआ बोला : "अजब परेशानी है !"

"मुझे नहीं बताएंगे ?"

विकल ने शैल की ओर देखा, दो क्षण देखता रहा, तब बोला : "बताऊंगा। मुझे लगता है मैं पागल होता जा रहा हूँ।"

शैल ने तत्क्षण अपना हाथ उसके मुंह पर रख दिया : "यही कहना था आपको ?"

बेला 'केस' में बन्द करते हुए मुस्कराकर विकल बोला : "तो फिर क्या कहता ? कोई दिखलाई नहीं पड़ता, पर कान में बात कहता है, तो

मैं समझूंगा नहीं कि पागल होता जा रहा हूँ।"

"क्या सुनाई पड़ा आपको?"

"आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे।"

आश्चर्य से शैल ने विकल की ओर देखा। सहसा इसका वाक्य का अर्थ वह समझ न सकी।

"इसके अर्थ?" उसने पूछा।

विकल मुस्कराया : "तुम नहीं समझोगी।"

"आप समझते हैं?"

"हां।"

"तो मुझे भी समझा दीजिये।"

विकल के अधरों पर फिर एक भीनी सी मुस्कान फैल कर रह गई। बोला : "दो रात वह लगातार मेरा बेला सुनने आया था, तीसरी रात मैं सो गया, तो मुझे जगाकर बोला था, 'आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे?'..."

न जाने क्यों शैल सिहर उठी : "कौन था वह?"

"राजीव। कहता था, बेला पर मुझे पूरा अधिकार है। पहली दोनों रातों में अमल ने उसे नहीं देखा था, तीसरी रात वह अपनी कोठरी में चला गया था। पर मैंने उसे वहीं बराबर देखा था, और तीसरी रात तो उससे खूब बातें भी कीं..."

शैल की सिहरन बढ़ गई, बोली, तो स्वर कांप रहा था : "आपने राजीव को देखा और अमल जी ने नहीं?"

"हां," विकल ने विकार रहित स्वरमें उत्तर दिया : "तुम्हें आश्चर्य हो रहा है न? होना भी चाहिए। अमल तो कहता था, यह मेरा भ्रम था केवल और कुछ नहीं।"

"और वही स्वर आपको फिर यहां सुनाई पड़ा?"

"हां।"

शैल की समझ में न आया कि वह क्या करे, क्या कहे ?

"शैल !" विकल ने कहा।

"जी।"

"यहां रहकर मुझे चैन नहीं मिल सकेगा। इलाहाबाद जाना ही पड़ेगा।"

शैल कुछ उत्तर न दे सकी। नासापुटों से एक निश्वास निकला और मुख मलीन हो गया।

तांगे से उतर कर विकल सीधे अपने कमरे में चला गया। बेचू काका सामान उतरवाने लगे।

उस समय विकल के मस्तिष्क पर केवल एक व्यक्ति—शैल—का अधिकार था। मुश्किल से पांच घंटे हुए होंगे उसे शैल से अलग हुए, लेकिन लगता है एक युग बीत गया।

कमरे में चारों ओर दृष्टि डाली। चार साल से जिन चार दीवारों के भीतर रहता था, वे आज उसे अपरिचित लग रही थीं। आलमारी में किताबें करीने से सजी थीं जिन्हें उसने महीने भर से नहीं छुआ था और जिन पर गर्द की एक मोटी-सी परत जम गई थी। कमरे की सभी चीज़ें उसे अपनी नहीं मालूम पड़ रही थीं। खिड़की खोल कर बाहर देखने लगा। बाहर आसमान था, हवा थी, लेकिन उसके लिये कहीं कुछ न था। धीमे स्वर में फुसफुसाया: "शैल!"

"भैया!" बेचू काका ने पास आकर प्यार से कहा: "खाना खा लो और आराम करो। सफ़र करके आये हो, थकी लग रही होगी।"

विकल शुष्क मुस्कान मुस्काया, बोला: "अब एक बजे रात क्या

खाना खाऊंगा, काका ! तुम खाओ और जाओ सोओ।"

"तो कॉफी ही पी लो। लो।"

विकल ने बेचू काका की ओर देखा। उनके हाथों में कॉफी का प्याला था, जिससे धुंआ निकल रहा था।

"तुम इतना काम क्यों करते हो, काका ? अब भला इस समय इसकी क्या जरूरत थी ?"

बेचू काका मुस्कराये : "कब किस चीज़ की ज़रूरत होती है, यह तुम से ज्यादा जानता हूँ। और भैया काम न करूँ तो करूं क्या ?"

प्याला उसके हाथ में थमाकर काका चले गये।

कॉफी के दो घूंट पिये, तो कुछ आराम मालूम पड़ा। बेचू काका भी उसका कितना ध्यान रखते हैं ! बचपन से उसने उनके अतिरिक्त किसी और की गोद नहीं जानी, केवल दीदी को छोड़कर ! दीदी और बेचू काका ! कितनी लगन से बेचू काका उसे नहलाया करते थे, और क्रीम, पाउडर लगाकर साफ इस्तिरी किये हुए रेशमी कपड़े पहनाकर, पैराम्बुलेटर पर बिठाकर बड़ी दूर तक घुमाने ले जाया करते थे ! उसे भूख लगा करती तो अपने हाथ से ही काका उसे खाना खिलाते, चम-चम चमकते हुए चम्मच से, गले में कपड़ा लगाकर, जिससे खाना गिरने से कपड़े न खराब हो जायें ! उनका खेलने का मन होता तो वे घोड़ा-हाथी बन जाया करते, और उसे अपनी पीठ पर चढ़ा कर दोनों हाथों और घुटनों के बल चलकर घर भर का चक्कर लगा आते और वह उनकी पीठ पर बैठा किलक-किलक कर कहा करता, "टिक टिक घोड़े, टिक-टिक घोड़े, चल नहीं मारूंगा दो कोड़े !" वह सोना चाहता, तो अपने कंधे से लिपटा कर, अपनी गोदी में सुलाकर, पालने में लिटा कर तब तक मीठी-मीठी लोरियां गुनगुनाया करते जब तक उसकी स्वप्निल आंखें मुंद न आतीं और वह गंभीर निद्रा में निमग्न न हो जाता !

वह बड़ा हुआ, तो बेचू काका का उसके प्रति स्नेह भी और बढ़

गया। वह स्कूल पढ़ने जाता, तो उसके पहले नहला-धुलाकर, कपड़े पहनाकर, खाना खिलाकर वे उसे स्कूल तक भेज आते। साढ़े तीन बजे छुट्टी होती तो बेचू काका उसके स्कूल के फाटक पर खड़े मिलते। उसका कोई काम वे किसी और को न करने देते, यहां तक कि स्वयं विकल को भी नहीं। कभी-कभी दीदी कहतीं: "तुम इसकी आदत ख़राब किये डाल रहे हो, काका! इस तरह तुम्हीं सब करते रहोगे, तो यह कब अपना काम करना सीखेगा!" तो मुस्कराकर बेचू काका कहते: "यही तो भैया के खाने पीने के दिन हैं, दीदी, अभी से बोझ पड़ जायगा, तो वे मुस्करायेंगे कब?" दीदी निरुत्तर हो जातीं। कहना चाहतीं भी तो क्या कहतीं? और जब वह बी० ए० में पढ़ने इलाहाबाद पहुँचा तो काका भी उसके साथ थे।

कॉफी पीकर प्याला मेज़ पर रख दिया। उठकर कमरे में टहलने लगा। एक बार फिर उसने किताबों पर दृष्टि डाली, उनके पास गया, एक किताब निकालने के लिये हाथ बढ़ाकर फिर पीछे खींच लिया। न मालूम कब बेचू काका ने उसका बिस्तर बिछा दिया था। उस पर लेट गया, करवटें बदलने लगा। आंखों में नींद बिल्कुल न थी, लेटे रहना व्यर्थ समझ फिर कुर्सी पर बैठ गया। पेन निकाला और उस पर लिखना आरम्भ किया।

"शैल प्रिय,

"साढ़े बारह बजे रात न चाहते हुए भी यहां पहुँच गया। लग रहा था, गाड़ी मुड़कर बांदा चल दे तो..."

वह चौंका। वाक्य अधूरा ही रह गया। किसी ने उसका नाम लेकर उसे पुकारा था।

"अमल!" उसने कहा और घूमा।

द्वार अन्दर से बन्द था। खोलकर बाहर देखा कोई न था। उसे बन्द कर फिर कुर्सी पर बैठ गया और कलम हाथ में उठाई।

"विकल !" क्षीण-से स्वर में किसी ने उसे पुकारा।

मुड़ा तो अनायास ही खिड़की के समक्ष खड़ी कोई आकृति दिखलाई पड़ी। धीरे-धीरे चलकर वह उसके पास पहुँचा, और उसे देखते ही चीख़ पड़ा—आश्चर्य से दुःख से : "अरे, राजीव तुम ! यह क्या दशा बना रखी है अपनी ?" अनजाने ही 'आप' की खाई पट गई।

राजीव मुस्कराया। वह सचमुच बहुत बदल गया था। डेढ़ माह पहले और अब के राजीव में बहुत अन्तर था। उसका शरीर पहले से क्षीण होकर पीला पड़ गया था, और एक अजीब तरह की उदासी मुखाकृति पर छाई हुई थी।

"बैठ जाओ न कुर्सी पर !" विकल ने अनुरोध किया : "खड़े क्यों हो ?"

धीरे-धीरे चलकर राजीव कुर्सी पर बैठ गया।

"बीमार हो गए थे क्या तुम ?" विकल के स्वर में आत्मीयता थी।

राजीव ने सिर हिलाया : "नहीं।"

"फिर यह दशा कैसे बना डाली अपनी ?"

एक क्षण रुक कर उसने उत्तर दिया : "इसका दोष मुझ पर नहीं तुम पर है।"

विकल चौंका, जैसे पैर पर अंगारा पड़ गया हो, बोला : "मुझ पर क्यों ?"

"तुमने मुझे इतने दिन प्यासा रखा है। और इसी अतृप्त तृषा के कारण मेरी यह दशा हुई है, तो फिर दोष किसे दूं ?"

विकल लज्जित हो उठा। बोला : "उस रात तुम्हें बताना भूल गया था, कि मैं माह-डेढ़ माह को बाहर जा रहा हूँ।"

"और मैं हर रात यहां आया करता था। तुम्हें तो कभी मेरी याद आई नहीं होगी ?"

विकल चुप रहा। क्या उत्तर देता। डेढ़ माह के प्रवास में केवल

एक बार ही उसे राजीव की याद आई थी। शैल से मिलने की प्रसन्नता में वह सब कुछ भूल गया था, अमल को, राजीव को, यहां तक कि सदा अपने साथ रहने वाले बेला को भी।

"और तुम गये क्यों थे बाहर ?" राजीव ने जैसे उलाहना दिया।

"मैं बिल्कुल भूल गया," विकल ने कहा : "तुम्हें अपने विवाह का निमन्त्रण देना भी भूल गया। मैं बहुत लज्जित हूँ। मुझे क्षमा नहीं करोगे, राजीव ?"

"तो तुमने विवाह भी कर लिया !" राजीव ने एक गंभीर सांस ली।

"हां।" उत्तर देने से पहले विकल को शैल की याद आई और राजीव के निश्वास को वह लक्ष्य न कर पाया।

"तुमने विवाह भी कर लिया ?" राजीव ने दोहराया : "पत्नी तो अच्छी मिली ?"

"हां !" सिर हिला कर विकल ने उत्तर दिया।

"उन्हें ही पत्र लिख रहे थे ?" राजीव ने पूछा।

"हां।"

"तब तो मैंने बाधा डाली। तुम लिखो मैं कल फिर आऊंगा।" वह उठा।

"नहीं, तुम बैठो," विकल ने फ़ौरन कहा : "मैं फिर लिख लूंगा। बहुत दिन बाद तुम से मिला हूँ, बातें करना चाहता हूँ।"

राजीव बैठ गया।

विकल कुछ कहने ही वाला था, कि राजीव बोला : "आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे ?"

"बुझाऊँगा।"

विकल ने 'केस' से बेला निकाला, और गले से टिका कर गज फेरा।

"लगता है, डेढ़ महीने बेचारे को छुआ भी नहीं।" राजीव ने कहा।

विकल की आँखें शर्म से झुक गईं। कुछ उत्तर न दे सका।

"मेरा ध्यान नहीं रहा तो कोई बात नहीं, पर अपने बेला का तो ख्याल किया होता!"

विकल के पास इसका भी कोई उत्तर न था।

उसने गज फेरा और बाएं हाथ की अंगुलियाँ चलाईं। वातावरण "जयजयवन्ती" से रंजित हो उठा।

विकल संगीत में बिल्कुल लीन हो गया। बजाते-बजाते पसीने की धारें उसके अंग-अंग से चूने लगीं, बाल अस्तव्यस्त हो उठे, और सम्पूर्ण शरीर संगीतमय हो उठा।

वह बजाता ही जाता, यदि बेचू काका का स्वर उसे चौंका न देता।

"भैया!"

वह चौंका, गज बेला के तारों से दूर जा रहा। उसने रिक्त नयनों बेचू काका को देखा।

"राजीव कहां है?" उसने पूछा। जिस कुर्सी पर राजीव बैठा था, अब वह खाली पड़ी थी।

"राजीव?" बेचू काका चौंके। यह नाम उन्होंने पहली ही बार सुना था।

विकल को फौरन ही याद आया। काका राजीव के विषय में क्या जानें? उसने बात बदली : "कै बज गए, काका?"

"चार।"

"अरे, चार बज गए?"

"राजा भैया, तुम कैसे आदमी होते जा रहे हो?" काका ने कहा : "रात-रात भर जागोगे, तो शरीर नहीं चौपट हो जाएगा?"

"नहीं जागूंगा, काका। इस बार माफ़ कर दो।"

"हाँ, जल्दी ही तुम्हें सो जाना पड़ेगा। और अगर तुम नहीं सोया करोगे, तो मैं भी नहीं सोऊंगा। समझे?"

"नहीं काका, तुम्हें तकलीफ़ नहीं देना चाहता मैं। यों ही क्या कुछ कम हैरान किये रहता हूँ। मैं बहुत जल्दी सो जाया करूंगा।"

"तो अभी सो जाओ। बेला मैं रक्खे देता हूँ।"

विकल लेट गया। काका ने बेला बक्स में रक्खा, बिजली बुझाई और कमरे से बाहर चले गए।

बहुत देर तक विकल सो जाने का प्रयत्न करता रहा, परन्तु जब उसने समझ लिया कि शैल की स्मृति उसे सोने नहीं देना चाहती, तो चुपके से उठा, टेबिल लैम्प जलाया, और पैड पर लिखे हुए वाक्यों को पढ़ा :

"शैल प्रिय,

"साढ़े बारह बजे रात न चाहते हुए भी यहाँ पहुँच गया। लग रहा था, गाड़ी मुड़ कर बांदा चल दे, तो..."

कलम उठाई, और आगे लिखना शुरू कर दिया।
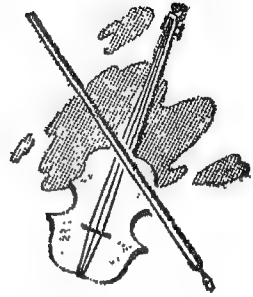
"माफ़ करना, विकल," अमल ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा : "कल रात नहीं आ सका।"

विकल मुस्कराया : "माफ किया! आओ, बैठो।"

अमल बैठ गया।

"काका," विकल ने दूसरे कमरे की ओर देख पुकार कर कहा : "अमल आया है। एक प्याला और दे दो।"

"अच्छा भैया!" अन्दर से काका का स्वर फिर आया।

उषा जा चुकी थी। प्रातःकालीन मन्द पवन चलने लगा था। विकल चार बजे के पश्चात् जो शैल को पत्र लिखने बैठा, तो लिखता ही रह गया। घड़ी की तीन सुइयों ने अविराम गति से चलकर समय को पीछे ढकेल दिया। साढ़े पाँच बजे जब बेचू काका उठे, तो उन्होंने विकल को मेज़ पर झुके लिखते हुए पाया। वात्सल्यसिक्त उपालम्भ उनके मुख से निकला : "तो भैया, तुम नहीं ही सोये!" हंस कर और (न जाने क्यों) कुछ लजाकर विकल ने उत्तर दिया : "नींद ही नहीं आई काका!"

काका ने स्नेह से एक बार उसकी ओर देखा, और तब वे चले गये। कॉफ़ तैयार हुई। वह पीने बैठा ही था, कि अमल आ गया। दोनों पीने लगे।

"मेरा तार तो मिल गया था?" विकल ने पूछा।

"हाँ। तभी तो सवेरे-सवेरे भागा आ रहा हूँ," अमल ने उत्तर दिया।

"रात स्टेशन पर क्यों नहीं आये?"

"आज डिपार्टमेंट में 'एसासियेशन' की 'मीटिंग' है। मुझे एक पेपर पढ़ना है। उसी की तैयारी कर रहा था।"

"तब तो अपराध क्षम्य है!"

दोनों मुस्कराये।

"शैल जी को विदा कर आये?" अमल ने पूछा।

"हाँ, मेरी गाड़ी से एक घंटे पहले बांदा की गाड़ी छूटी थी।"

"बहुत बुरा लगा होगा?"

"हां, बहुत। रात भर सोया नहीं।"

अमल मुस्कराया : "अभी तो इब्तदा है जनाब! आगे आगे देखिये होता है क्या..."

यह चुटकी विकल को भली लगी। वह मुस्कराया : "तुम्हें तो सब पता लगता ही रहेगा, क्या होता है?"

"वह तो है ही। तुम नहीं बताओगे, तो भी मैं जान लूंगा।"

"अच्छा!" विकल ने आश्चर्य का भाव दिखाया : "कैसे भला?"

"अरे, महाशय, खत का मजमूं भांप लेते हैं लिफ़ाफ़ा देखकर।"

"ओ हो!" विकल ने कहा। और दोनों जोर से हस पड़े, फिर क्षणिक निःस्तब्धता रही, जिसमें विकल और अमल की मुस्कराहटें ही बातें करती रहीं।

"विकल!" अमल ने सहसा गंभीर होकर कहा : "मुझे तुम्हारे

भाग्य से ईर्षा होती है।"

विकल मुस्कराया : "क्यों भला ?"

"मुझे लगता है, तुम्हारी जैसी मेरी भी स्नेहमयी दीदी होतीं, वात्सल्य-मय काका होते, और···" वह झिझका, फिर एक झटके से कह गया : "और अनुरागमयी पत्नी होती ?" उसकी आंखें सजल हो उठीं।

विकल ने कुछ द्रवित होकर, अधिक स्नेह से उसकी ओर देखा। पिछले चार वर्षों से वे बराबर साथ रहते आ रहे थे, परन्तु अमल के जीवन का यह अंग अभी तक विकल के सामने न आया था। अमल भावुक हो उठा था। विकल को लगा, अमल आज सब कुछ कह डालेगा।

"मुझे नहीं मालूम," अमल ने कहा : "मेरे माता-पिता कौन थे ? हो सकता है वे किसी सम्पन्न परिवार के रहे हों, हो सकता है वे मध्यम वर्ग या निम्न श्रेणी के सदस्य रहे हों, या यह भी हो सकता है, कि मैं अवैध सन्तान रहा होऊं। मुझे मालूम नहीं। जब मैंने होश संभाला, अपने को एक अनाथालय में पाया। मुझे अच्छी तरह याद है, उस समय मैं बहुत छोटा था, शायद छः-सात वर्ष का रहा होऊंगा। हम छोटे-छोटे लड़कों का दल बैंड बजाता हुआ नगर भर में भीख मांगने जाया करता था। भीख मांगने के विभिन्न उपाय हम लोगों को सिखाये जाते थे। मुझे अच्छा नहीं मालूम होता था, मेरी आत्मा सदा कोंचा करती, पर आज्ञापालन न करने पर पिटना पड़ता था, इसलिए भीख मांगा ही करता। और बड़ा हुआ, तो अनाथालय के दूषित वातावरण का मुझे कुछ-कुछ आभास मिला। उस नर्क से मुक्ति पाने के लिये मन तड़प उठा। एक बार साहस करके बन्धन तुड़ा कर भाग ही निकला।

नर्क की यंत्रणा से तो मुक्ति मिली, परन्तु अब पेट का प्रश्न उठ खड़ा हुआ। तब मैं ग्यारह वर्ष का था। उस समय से लेकर सोलह वर्ष की अवस्था तक मैंने जूठे बर्तन मांजे, जूतों पर पालिश की, बोझा ढोया,

अख़बार बेंचे, प्रेसों में कम्पोज़ीटरी की, प्रूफ़ पढ़े, सब कुछ किया, परन्तु पढ़ता रहा। बचपन से ही पढ़ने का चाव था, और यही मेरा लक्ष्य बन गया था। अपने लक्ष्य की ओर मैं बढ़ता गया, बढ़ता जा रहा हूँ। ईश्वर की कृपा से मुझे कुछ बुद्धि मिली है। उसका कितना लाभ धनिकों ने उठाया, मेरा कितना लहू पैसे के लिये पसीना बना, यह मैं ही जानता हूँ। परन्तु मुझे दुःख नहीं, क्योंकि मैं अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता जा रहा हूँ।

"मुझे किसी वस्तु का--विशेषकर धन का--अभाव तो कभी महसूस ही नहीं हुआ। कैसे होता--अभावों में ही तो सारा जीवन बीता है! परन्तु एक की आकांक्षा सदा बनी रही—स्नेह की। जिस वातावरण में मैं रहा, उसमें स्नेह का तनिक भी समावेश न था। माता-पिता का वात्सल्य तो पा ही नहीं सका। मेरा हृदय सदा ऐसे व्यक्ति के लिये तरसता रहा, जिस के पास बैठकर मैं रो सकूं, हंस सकूं, दुःख में स्नेह और सान्त्वना के दो बोल सुन सकूं और सुख में आगे बढ़ने की प्रेरणा पा सकूं।...तुम मिले, सहसा ही समीप चले आए। तुम्हारा स्नेह मिला, परन्तु मेरा हृदय (बुरा न मानना) संतुष्ट न हो सका। तृष्णा बनी ही रही।

"तुम्हारे समीप आया, तो दीदी, काका, शैलजी के व्यक्तित्वों की झलकियां देख सका। प्रतीत हुआ, तुम्हारे चारों ओर कितना सुखद, कितना प्रेममय, कितना प्रेरणात्मक वातावरण है। मन की प्यास और तीव्र हो उठी। और आज मैं तुम्हारे भाग्य पर ईर्षा करता हूँ, विकल।"

अमल के मानव-मन की ग्रंथियां खुलती जा रही थीं, और विकल निःशब्द बैठा था। उसने कुछ कहकर अमल की भाव-शृंखला को तोड़ना उचित नहीं समझा। अमल चुप हुआ, तो उसने पूछा: "तुम्हें मेरी सम्पत्ति पर ईर्षा नहीं होती, अमल?"

अमल की आँखें विकल की आंखों से मिलीं। उसने दृढ़ स्वर में कहा: "नहीं। क्योंकि धन पानी-सा तरल है; वह आज तुम्हारे पास

है, कल जा भी सकता है। मुझे ईर्षा होती है यह देखकर कि तुम्हें कितना प्यार मिलता है, और प्यार में वह स्वर्गिक आनन्द है, जो भौतिक वस्तुओं में कभी नहीं मिल सकता। नहीं, विकल, मुझे तुम्हारे धन के प्रति कोई आकर्षण नहीं।"

"मेरे स्नेह का भी तुम्हारे निकट कोई मूल्य नहीं, अमल?"

"नहीं, ऐसा न कहो," अमल विकल के इस वाक्य से जैसे आहत हो उठा : "तुम्हारे अलावा मैं अब तक और किसी का स्नेह पा ही कहां सका हूँ? पर इससे मेरा मन तृप्त नहीं हो पाता। वह और मांगता है, थोड़ा और स्नेह।"

विकल को प्रतीत हुआ, अमल सच रहा है। अवश्य ही उसे थोड़े और स्नेह की आवश्यकता है। उसे प्रेम करने वाले तो कई व्यक्ति थे— दीदी, काका, अमल—फिर भी उसे शैल की आवश्यकता का आभास हुआ। फिर भला अमल को क्यों उसके अकेले स्नेह से तृप्ति होगी?

कुछ देर बाद अमल ही फिर बोला : "एक बार मुझे ऐसा महसूस हुआ था मेरी प्यास बुझेगी। पर वह अनुभूति कसक बन कर ही रह गई। मैं आज भी उतना ही प्यासा हूँ, जितना उस अनुभूति के उत्पन्न होने से पहले था।"

विकल चुप रहा।

"लेकिन विकल," अमल सहसा उत्तेजित हो उठा : "मैं तुम्हें दिखा दूंगा, कि मुझे प्यार की आवश्यकता नहीं। मैं उसके बिना भी जी सकता हूँ।"

विकल ने आश्चर्य से अमल की ओर देखा। एकाएक अमल के उत्तेजित हो पड़ने का कारण उसकी समझ में न आ सका। हां, इतना अवश्य उसे भान हो गया कि कोई विचार, कोई घटना उसके हृदय को मथ रही है। और अमल उसी तरह एकाएक शान्त हो कर बोला : "मुझे क्षमा करो, विकल, मैं अकारण ही उत्तेजित हो उठा था।"

विकल मुस्कराया : "मुझे नहीं मालूम था, अमल, तुम इतने प्यासे हो।"

फिर कुछ क्षणों के लिये पूर्ण निस्तब्धता रही।

"विकल," अमल बोला तो उसका स्वर सर्वथा परिवर्तित था, उत्तेजना और स्थिरता के स्थान पर कोमलता और माधुर्य था : "मेरी बातों का बुरा न मानना। न मालूम मुझे क्या हो गया था?"

विकल मुस्कराया। बोला : "बुरा क्यों मानूंगा।"

"दीदी अच्छी तरह हैं कानपुर में?"

"हां।"

"पत्र लिखना तो उसमें मेरा भी प्रणाम लिख देना।"

"तुम भी क्यों नहीं उसमें एक पत्र क्यों नहीं रख देते?"

"यही करूंगा। और बताओ, तुमने तो खूब बेला बजाया होगा! मेरी बांसुरी पर तो गर्द की परतें जम गई हैं।"

विकल का सिर झुक गया। वह कुछ उत्तर न दे सका।

समझकर अमल मुस्कराया, बोला : "तभी मैंने कहा था, अभी तो इब्तदा है, आगे-आगे देखिये होता है क्या..."

विकल हंसा : "सुना नहीं है तुमने, होता है वही जो मंज़ूरे ख़ुदा होता है।"

"अच्छा, छोड़ो इन बातों को। बताओ बजाओगे?"

सहसा विकल को रात की बात याद हो आई। राजीव ने कहा था : "आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे?" उसे लगा, राजीव भी आ जाये तो कितना अच्छा हो! बेला आलमारी से निकाला। कंधे से टिकाया। बांसुरी अमल ने अधरों पर रखी। 'जयजयवन्ती' के बोल दोनों वाद्ययंत्रों से निकल कर वातावरण में फैल गये। दोनों डूब गये।

विकल बजा बेला रहा था, परन्तु मस्तिष्क में उसके राजीव घूम रहा था। काश, राजीव भी इस समय आ जाता!

दस-पन्द्रह मिनट बीत गये। विकल ने पूरी शक्ति से बेला बजाया, परन्तु राजीव उसे दीखा नहीं। कुछ देर और प्रयत्न करने पर भी जब वह नहीं आया, तो वह एकाएक खिन्न हो उठा। हाथ ढीला पड़ गया और राग कराह कर टूट गया। अमल ने चौंक कर विकल को देखा। विकल के मुख पर एक अति करुण भाव तिर आया था।

"क्या हुआ, विकल?" उसने आतुर स्वर से पूछा।

"कुछ नहीं!" विकल ने उत्तर दिया। परन्तु उसके मुख का भाव अभी तक स्थिर था।

"मुझे भी नहीं बताओगे?"

"मन नहीं होता बजाने का!" विकल बड़ी कठिनता से कह पाया।

अमल हंसा: "तो पहले क्यों नहीं कह दिया।"

विकल ने कोई उत्तर नहीं दिया।

कुछ क्षण निस्तब्धता में ही सरक गये। अमल को लग रहा था, विकल में कुछ परिवर्तन आ गया है। विवाह के पश्चात्, उसने सोचा, परिवर्तन आ जाना स्वाभाविक है; शैल के मधुर सम्पर्क में व्यतीत हुए दिनों की स्मृति सहसा कुरेद उठी होगी, और वह अन्यमनस्क हो उठा है। उसने निश्चय किया कि विकल का मन किसी और विषय से उलझाकर शैल की स्मृति से अलग कर देना ही उचित है।

उसने पूछा: "वह छाया फिर कभी दिखाई पड़ी थी तुम्हें, विकल?"

"छाया?" विकल चौंका।

"हां," अमल ने कहा: "वही छाया, जिसको तुमने मेरे सामने दो दो रातों में देखा था।"

विकल का मन हुआ कि वह अमल को बता दे कि राजीव छाया नहीं, वास्तविकता है, और उसके लिये कितना महत्वपूर्ण, कितना अमूल्य है। अधर खुले भी, परन्तु न जाने क्यों, जाने किस प्रेरणा से वह कह

गया : "नहीं।"

अमल को अपनी विजय मालूम पड़ी, उत्फुल्ल स्वर में बोला : "मैंने तो पहली रात में ही कहा था, कि वह केवल तुम्हारा भ्रम था।"

विकल मुस्कराया। यह अमल ही स्वय कितने भ्रम में है। राजीव उतनी ही सजीव वास्तविकता है, जितना वह स्वयं अथवा अमल। परन्तु उसकी मुस्कान का अर्थ अमल ने कुछ दूसरा ही लगाया, बोला : "पर तुम तो मानते ही न थे। उस समय तो तुम उस आकृति को छोड़ कर और सभी चीज़ों को काल्पनिक समझने लग गए थे।"

विकल फिर मुस्कराया।

उस समय वह सोच रहा था, काश उसके कानों को सुनाई पड़ जाता : 'आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे?' और वह बेला उठा लेता!
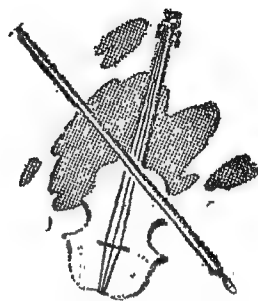
शाम की डाक से शैल का ख़त आया, और विकल उसी में डूब गया। न जाने कितनी बार पढ़ा—हर बार यही लगता था, एक बार और पढ़ ले। नन्हें-नन्हें, खूबसूरत अक्षर! चूम लिया उन्हें।

खाना खाने में भी मन न लगा। बेन्चू काका कह रहे थे कि दो महीने से उसने कुछ नहीं पढ़ा है, इसलिए अब उसे अपनी किताबों में डूब जाना चाहिये। काका की बात उसके कानों में पड़ती रही थी, लेकिन वह ठीक से सुन न पा रहा था। उसके मस्तिष्क में केवल एक गूँज थी—शैल को उत्तर देना है।

और रात के एकान्त में शैल का पत्र फिर एक बार आद्योपान्त पढ़ गया। शैल की मधुर आकृति, और विदा होते समय का वेदनाभिभूत मुख याद आगया। पैड निकाल कर उत्तर लिखने बैठ गया।

काग़ज़ पर कलम रक्खी ही थी, कि किसी ने पुकारा : "विकल!"

स्वर उसका परिचित था। पहचानने में देर न लगी कि कौन आ गया है। प्रफुल्लित हो उठा। पत्र और पैड वैसे ही मेज़ पर पड़े रह गये। उसने घूमकर देखा, राजीव खड़ा था।

"बैठो न !" उसने कहा।

मुस्कराता हुआ राजीव कुर्सी पर बैठ गया।

"बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ रहे हो !" उसने कहा।

विकल मुस्कराया।

"पत्नी का पत्र आया है ?" राजीव ने कहा।

विकल ने सिर हिलाया, मानो कहा : "हां।"

"मैं बार-बार विघ्न बन कर उपस्थित होता हूँ।" राजीव ने ही फिर कहा।

"नहीं तो !" विकल के मुंह से निकला : "तुम विघ्न नहीं हो। तुम्हारा सामीप्य मुझे बहुत अच्छा लगता है।"

मेज़ की ओर देखता हुआ, राजीव बोला : "उत्तर लिख रहे थे ?"

"नहीं, लिखने जा रहा था।"

सहसा राजीव बहुत आत्मीय हो उठा : "बहुत बेचैनी है ?" उसने पूछा।

विकल को यह आत्मीयता बुरी नहीं लगी। वह हर व्यक्ति से आत्मीय भी नहीं हो सकता। फिर भी उसे राजीव का यह पूछना बुरा न लगा।

"हां," उसने उत्तर दिया : "परन्तु तुम आ जाते हो, तो कुछ सांत्वना मिलती है।"

हां, राजीव के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा आकर्षण था, जिससे वह मुक्त न होना चाहता था। उसने अमल के साथ बेला का अभ्यास किया था, अनेक अवसरों पर अपनी कला का प्रदर्शन किया था, उसे प्रशंसा और मान दोनों ही मिले थे, परन्तु जिस आदर्श श्रोता की कल्पना वह किया करता था वह उसे कहीं न मिला था। बेला उसके जीवन का एक अति आवश्यक अंग था, उससे विलग रह कर उसका अस्तित्व मिट सकता था, बेला उसके प्राणों को नई कल्पना, नई कामना, नए उछाह से भर देता था। बेला के स्वर का वह भूखा था। यदि उसे जीवन भर बेला

बजाने के अतिरिक्त और कोई काम न करना पड़ता, तो उससे अधिक सुखी व्यक्ति दूसरा नहीं हो सकता था। और सदा से ही वह सोचा करता था, कि उसे कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाये जो बेला के स्वर के लिये उतना ही भूखा हो, जितना वह स्वयं था; जो जयजयवन्ती की स्वर लहरी में उतना ही डूब जाये, लीन हो जाये, जितना वह स्वयं हो जाया करता था। अमल के साथ उसने अभ्यास किया था। अमल प्यासा था, परन्तु बेला के स्वर का नहीं, प्यार का। उसका अतृप्त मानव मन सदा ही कुछ और प्यार के लिये तरसता रहता था। विकल को अमल में अपनी कल्पना के श्रोता की प्राप्ति न हो सकी। बेचू काका, इस में सन्देह नहीं, बहुत अधिक स्नेहिल थे, परन्तु उनके मन की शक्ति ही उस स्तर की न थी। दीदी बहुत ही व्यवहारकुशल महिला थी, उन्हें काम-काज से ही फ़ुरसत न थी कि वे विकल की बेला के स्वरों में खो सकें। यह नहीं कि विकल से उन्हें स्नेह न था; नहीं, विकल से उन्हें अति प्रगाढ़ स्नेह था और वे मन ही मन उसकी उन्नति की कामना किया करती थीं, परन्तु बेला के लिये उन के मानस में अधिक प्यास न थी। शैल उसे प्रिय थी, परन्तु उसके मन में विकल के प्रति अधिक स्नेह, आत्मसमर्पण था, विकल की बेला के प्रति नहीं। बहुत खोजने पर भी उसे अपनी कल्पना का श्रोता न मिल सका। और जब अनायास ही राजीव ने उसके जीवन में प्रवेश किया, उसकी कल्पना साकार हो उठी। आदर्श श्रोता उसे मिल गया। उसके जैसा ही विकल और प्यासा। उसकी बेला के तार और अधिक सजग, और अधिक मुखर हो उठे।

राजीव में आकर्षण था, कम से कम विकल के लिये। कुछ थोड़ी-सी मुलाकातों में ही उसने विकल के मन-मस्तिष्क पर अधिकार जमा लिया। एक समय था, जब उसे अनुभव होता था कि अमल के बिना वह बेला बजा ही नहीं पायेगा, कुछ नहीं कर पायेगा—अमल इतना आवश्यक हो गया था उसके लिये! इसके ठीक विपरीत अब उसे प्रतीत होने लगा

था कि अमल उसके जीवन में इतना महत्वपूर्ण नहीं है, उसने व्यर्थ ही उसे इतनी महत्ता दे दी थी ! वास्तव में उसे राजीव जैसे व्यक्ति की ही आवश्यकता थी। उसे विश्वास हो गया कि अमल अपना स्थान रखते हुए उसके लिये राजीव के समान आवश्यक नहीं हैं—नहीं तो पहले की तरह अब भी वह उसके साथ बेला में डूब न जाता ? राजीव की स्मृति भर के उभर पड़ने पर ही वह क्यों राग की ओर से वीतराग हो जाता ?

अनजाने ही विकल राजीव के आकर्षण पाश में बंध गया था, परन्तु अब मुक्त होने की ज़रूरत न समझता था। राजीव की उपस्थिति में वह सब कुछ भूल जाता था।

विकल की बात सुनकर राजीव मुस्कराया, बोला : "बहला रहे हो ?"

"नहीं, मन की बात कह रहा हूँ। तुम्हारी अनुपस्थिति मुझे कितनी खलती है, तुम क्या जानो ?"

राजीव के अधरों पर मुस्कान दौड़ी : "इस समय तो तुम्हें किसी और की अनुपस्थिति खल रही थी।"

विकल के पास कोई उत्तर न था।

"बहुत याद आती है न ?" राजीव ने फिर पूछा।

"हां।"

"आनी ही चाहिये। पर एक बात कभी सोची है तुमने ?"

"क्या ?"

"उनकी प्रतीक्षा में, उनके सम्पर्क में, कितना समय तुम खो चुके हो, और अब उनके विरह में, उनकी स्मृति में कितना अमूल्य समय खो रहे हो !" ...कड़ुवा सच है, बुरा न मानना।"

उसी क्षण विकल के मस्तिष्क में बेचू काका के शब्द बज उठे, "दो महीने से तुम्हारी पढ़ाई नहीं हो सकी, भैया, पर अब एक क्षण भी तुम्हारे पास नष्ट करने के लिये नहीं है !" वही बात अब राजीव

कह रहा है।

"ज़रा सोचो," राजीव ने फिर कहा : "कितने दिनों तक तुमने बेला को हाथ भी नहीं लगाया। क्या तुम्हें विश्वास है कि अब भी तुम उतना ही अच्छा बजा लेते हो, जितना उनके पहले बजा लेते थे?"

विकल को स्वयं पर ग्लानि होने लगी। बेला को इतने दिनों तक उसने क्यों बिसराया?

"विकल, तुम बड़े भोले हो!" राजीव ने खड़े होकर उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा : "अभी अनुभव ही कहां हुए हैं? पर तुम्हें बहुत सम्हल-सम्हल कर क़दम रखना है। तुम्हारा केवल एक लक्ष्य होना चाहिए, एक ध्येय, और उसे प्राप्त करने की तुम्हें प्राणपण से चेष्टा करनी चाहिये।"

विकल मौन रहा।

"मुझे ग़लत मत समझना, विकल," राजीव कहता गया : "न मेरी बात ही मानना, यदि ठीक न समझना। पर मेरी राय सुन अवश्य लो। मैं फिर कहता हूँ, कि तुम्हारा एक लक्ष्य होना चाहिये और तुम्हें प्रति क्षण उसी की ओर बढ़ने का प्रयास करना चाहिये।"

"मैं मानता हूँ, राजीव!" विकल ने कहा।

"चाहे कितनी ही बाधायें राह रोकें, पर तुम्हें उन्हें ठुकराकर आगे बढ़ जाना होगा, उपेक्षा से कतराकर उन्हें पीछे छोड़ देना होगा। लड़खड़ा कर अथवा ठोकर खा कर गिर पड़ना कायरों का काम है। बाधाओं से चोट कमज़ोरों को लगती है। तुम कायर नहीं हो, तुम कमज़ोर नहीं हो। तुम युवा हो, तुम समर्थ हो, तुम्हारे समक्ष एक लक्ष्य है, फिर क्यों तुम विघ्नों के सामने सिर झुका दो!..."

विकल ने राजीव की ओर देखा, और देखता ही रह गया। उसे लगा, राजीव के मुख मण्डल से अनोखी आभा प्रस्फुटित हो रही है, ऐसी जैसी उसने कभी न देखी थी। उसे प्रतीत हुआ कि राजीव के रूप

में उसके सामने कोई देवदूत खड़ा है, जो उस भूले हुए को राह दिखा रहा है। अभी तक उसे राजीव की उपस्थिति, राजीव का सामीप्य मधुर लगता था, अब उसे एक नवीन अनुभव हुआ—उसके हृदय में राजीव के प्रति प्रेम और आदर का संचार हुआ।

"मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, राजीव," उसने अपने अन्दर एक ज्योति-सी जलती हुई प्रतीत की : "कि संसार की कोई शक्ति मुझे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने से रोक नहीं सकती।"

राजीव ने विकल का कंधा थपथपाया : "मुझे विश्वास है, सफलता तुम्हारे पाँव चूमेगी।"

विकल का मानस, पुलक और गर्व से भर उठा।

"पर एक बात बताओ," राजीव ने पूछा : "अभी तक मुझे नहीं मालूम हो सका है।"

"क्या?"

"तुम्हारा लक्ष्य क्या है?"

"लक्ष्य?" विकल ने दोहराया, तनिक विचार करने के बाद बोला : "मैं बेला पर अधिकार चाहता हूँ..."

उसे हिचकते देखकर राजीव ने कहा : "और?"

"अंगरेज़ी साहित्य में डाक्टरेट की उपाधि लेना चाहता हूँ।"

अपनी बात पूरी कर उसने राजीव की ओर देखा, यह पता लगाने के लिये कि राजीव पर उसका क्या प्रभाव पड़ा है। परन्तु राजीव सर्वथा गंभीर था। उसके मुख से उसके मन का भाव जान लेना विकल की शक्ति से परे था।

तनिक देर पश्चात् विकल और राजीव की आंखें मिलीं। राजीव ने कहा : "तो यों कहो कि दो नावों पर सफ़र करना चाहते हो!"

विकल अप्रतिभ हो उठा। कुछ उत्तर न देते बना।

"नहीं, विकल, यह सिद्धान्त गलत है," राजीव ने कहा : "तुम दो

काम एक साथ नहीं कर सकते। एक समय में एक ही काम तुम्हें करना होगा। या तो संगीत में पारंगत हो लो, या डाक्टरेट ले लो।"

विकल के अधर उत्तर देने को हिले परन्तु शब्द न निकले।

"एक ही काम तुम कर सकते हो। एक को ही तुम्हें चुनना होगा। किसे अधिक पसन्द करते हो?"

अभी तक विकल ने कभी न सोचा था, कि ऐसी समस्या भी उसके सामने आ सकती है। वह सहसा कोई उत्तर न दे सका।

"दो रास्ते तुम्हारे सामने हैं," राजीव ने ही फिर कहा: "वर्ष-दो वर्ष के परिश्रम से तुम्हें डाक्टरेट मिल जायगी। परन्तु बेला के तार-तार पर सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिये हो सकता है, तुम्हें दो वर्ष लग जायें, चार वर्ष लग जायें, अथवा एक युग या पूरा जीवन ही बीत जाये। बोलो, किसे चहते हो?"

विकल को सोचने की आवश्यकता नहीं पड़ी। उसके कंठ से स्वयमेव फूट पड़ा: "बेला को। मैं बेला पर अधिकार करूँगा।"

जिस समय वह यह कह रहा था, उसका मुख अद्‌भुत् आभामय हो गया था।

राजीव ने प्रशंसा भरी दृष्टि से विकल की ओर देखा: "परन्तु यह तुम्हारे सम्पूर्ण जीवन का प्रश्न भी हो सकता है, विकल!"

विकल के नयनों से प्रकाश निकल पड़ा, वह बोला: "मैं समझता हूँ, राजीव!"

"ऐसा भी हो सकता है, कि जीवन भर तुम्हारी साधना अपूर्ण ही बनी रहे।"

"मैं दृढ़ हूँ, राजीव!"

"तुम सफल हो, विकल," राजीव ने जैसे उसे उद्‌बोधित किया: "मेरी शुभकामनाएं तुम्हारे साथ हैं।"

सिर झुकाकर जैसे विकल ने राजीव को इस आशीर्वाद को ग्रहण

किया और फिर जब सिर उठाया तो राजीव कमरे में नहीं था। विकल को तकलीफ़ हुई, क्योंकि वह अभी राजीव से और बातें करना चाहता था।

उसकी दृष्टि शैल के पत्र पर पड़ी। एक क्षण पश्चात् ही वहाँ से हटकर पुस्तकों की अलमारी में उलझ गई। मोटी मोटी पुस्तकों पर थमी रही कुछ देर, फिर विरक्त हो उठी। उसे डाक्टरेट नहीं लेनी है, फिर इन पुस्तकों से मोह क्यों? कमरे की तीन दीवारों पर फिसल कर, एक बार खुली खिड़की से बाहर जाकर, उसकी दृष्टि मेज पर रक्खे बेला के बक्स पर स्थिर हो गई। बेला! हाँ, बेला ही उसका जीवन है, बेला ही उसका प्राण! वह अवश्य साधना में रत हो जायगा। वर्षों की साधना के उपरान्त जब 'जयजयवन्ती' पर उसका पूर्ण अधिकार हो जायगा, तो वह अपनी कला से पशु-पक्षी, चर-अचर सब को चंचल, आलोड़ित कर कर दिया करेगा। उसके यंत्र के तारों के कम्पन से उत्पन्न स्वर सुनकर सभी विभोर हो जाया करेंगे। और एक दिन आयेगा, जब उसी प्रकार सृष्टि को भूल कर बेला बजाता हुआ वह अनन्त में लीन हो जायगा—हाँ, अनन्त में, और उसका नाम भर रह जायगा केवल! उसके मर जाने के पश्चात् आने वाली पीढ़ियाँ कहा करेंगी, "एक था विकल! वह बेला के लिये जिया, और बेला के लिये ही मरा।" वह अवश्य अपनी सम्पूर्ण शक्ति से साधना में रत हो जायगा।

परन्तु क्या वह सबको भूल सकेगा? क्या काका और दीदी का स्नेह आड़े न आ जायगा? क्या वह उनकी इच्छा की अवहेलना कर सकेगा? क्या वह अमल से स्नेह का नाता तोड़ सकेगा? क्या शैल के अप्रतिम माधुर्य को वह ठुकरा सकेगा? यदि उसे ऐसा करना पड़ा तो...

नहीं, नहीं, वह ऐसा कभी नहीं कर सकेगा। वह दीदी, काका,

अमल और शैल के बन्धन नहीं तोड़ सकेगा, तोड़ सकने की शक्ति ही नहीं उसमें। उनके साथ रह कर ही जो कुछ वह कर सकेगा, करेगा, नहीं कर पायेगा उसकी चिन्ता ही न करेगा। किसी भी दशा में वह उन्हें त्याग नहीं सकेगा। कभी नहीं।

परन्तु बेला ?

व्याकुल होकर उसने अपना सिर दोनों हाथों से ज़ोर से दबा लिया। लगा, कहीं अधिक दबाव से वह फट न जाये।

विकल अत्यधिक बेचैनी से कमरे में टहल रहा था। एक क्षण को भी उसके पाँव ठहर न रहे थे। बार-बार अपनी हथेलियों को रगड़ता और मसलता, बार-बार कमरे के भीतर-बाहर दृष्टि पसारता, और टहलता अस्थिर, डगमग पगों से।

उसके व्यक्तित्व पर एक अजीब तरह की उदासीनता का आवरण छा गया था। सदा सावधानी से संवरे रहने वाले बाल अस्त-व्यस्त थे, मुख पर अनपेक्षित उदासी और गंभीरता छाई हुई थी, और आँखें सूजी हुई और लाल थीं।

कुछ देर पहले ही अंगड़ाई लेकर दिवस जागा था, अभी भी अलसाया ही सा था। उस समय भी विकल उतनी ही व्यग्रता से टहल रहा था। बेचू काका ने उसे देखा था, और विना कुछ कहे ही चले गये थे।

वे फिर कमरे में पहुँचे। विकल खिड़की के सामने खड़ा नीले आकाश की ओर देख रहा था।

"भैया!" उनके स्वर में असीम वात्सल्य था।

विकल उनकी ओर घूमा। कोई और समय होता, तो वह कहता,

"हां, काका," परन्तु उस समय वह कुछ नहीं बोला।

"भैया!" बेचू काका ने फिर कहा। जैसे पूछ रहे हो, 'क्या हो गया है तुम्हें?'

कुछ देर पश्चात् जैसे थूक का एक बड़ा क़तरा निगलकर विकल ने उत्तर दिया: "हां, काका।"

"कॉफी पी लो।"

विकल ने पहली बार देखा, काका के हाथ में ट्रे थी।

"मन नहीं है, काका।"

बेचू काका की तीक्ष्ण दृष्टि ने देर तक उसे देखा, तब उन्होंने कहा: "तुम्हें क्या हो गया है, भैया?"

विकल के अधरों पर एक क्षीण मुस्कान बिखर गई: "मुझे खुद नहीं मालूम, काका।"

"तुम्हें क्या परेशानी है? क्या चिन्ता है?"

"कोई परेशानी, कोई चिन्ता नहीं, काका!"

"फिर क्यों अपनी यह दशा बना रक्खी है? शीशे में अपना चेहरा देखा है आज? छः महीने के बीमार मालूम पड़ते हो!"

तनिक देर चुप रहने के बाद विकल ने उत्तर दिया: "मुझे खुद भी नहीं मालूम मुझे क्या हो गया है? बस, एक अजीब तरह की बेचैनी है, कोई काम करने को जी नहीं चाहता। समझ नहीं पा रहा हूँ, क्या करूं, काका!"

काका ने जैसे कुछ सोचकर कहा: "दीदी की याद आई है?"

"दीदी की याद कब नहीं आती, काका!"

"फिर क्या बाँदा जाना चाहते हो?"

विकल के मुख पर हलकी-सी लालिमा दौड़कर रह गई, बोला वह: "नहीं, काका।"

बेचू काका ने एक क्षण को उसे देखा, मन में मुस्कराये, स्नेह से

उसके बालों को छूते हुए कहा : "बहुत परेशान मत हो। कॉफी पी लो।"

विकल इनकार न कर सका। कॉफी पी चुका यो काका ट्रे ले कर चले गये।

काका चले गये, परन्तु विकल की व्यग्रता दूर न हो सकी। कुर्सी से उठकर फिर खिड़की के सामने खड़ा हो गया। आँखें उसकी आकाश पर टंग गईं। श्वेत रुई जैसे बादलों के गाले दौड़ लगा रहे थे। सहसा विकल को लगा, उनसे कोई आकृति बनती जा रही है। आँखें कुछ और फैलकर निर्मित होने वाली आकृति पर स्थिर हो गईं। एक-डेढ़ मिनट पश्चात् आकार तैयार हो गया। देखकर वह चौंका, फिर अधरों पर मुस्कान खिल उठी। वह राजीव का चेहरा था। कुछ देर पहले की उसकी व्यग्रता न जाने कहाँ विलीन हो गई, और वह पुकार उठा : "राजीव !" बादलों से बना हुआ वह चेहरा जैसे मुस्कराया, और तब पवन ने उसे एक धक्का दिया। मुख बिखर गया। राजीव का अन्त हो गया। विकल का प्रसन्न मुखमंडल मुरझा गया, और फिर उदासी ने उस पर अधिकार कर लिया। अधिक करुण स्वर में उसने पुकारा : "राजीव !" और उसकी आँखों में आँसू छलक आये।

"भैया !"

विकल चौंका। बेचू काका का आना उसे तनिक भी अच्छा न लगा। वे क्यों जासूस की तरह उसके पीछे पड़े रहते हैं ? उसने कहा : "हां, काका !", तो उसके स्वर में ऐसी रुक्षता थी, जिसने काका को चौंका दिया। कुछ देर तो वे कुछ उत्तर ही न दे सके, फिर बोले, तो उनके स्वर में उत्साह न था, हां, प्रेम अवश्य था, और थी कुछ करुणा : "भैया, मैं यह पूछने आया था, कि तुम क्या खाओगे ?"

विकल ने अनुभव किया कि उसने काका की भावनाओं को ठेस पहुँचाई है। अभी तक काका ने कभी उससे नहीं पूछा था कि वह क्या खायेगा—वे जानते थे, क्या चीज़ उसे अच्छी लगती है, और क्या नहीं

अच्छी लगती। ग़लती अपनी ही मालूम पड़ी। बोला : "मुझे माफ कर दो, काका, मेरे स्वर से तुम्हें ठेस पहुँची है। पर मैंने जान बूझ कर वैसा नहीं किया। देख रहे हो न, मैं कितना परेशान हूँ।"

काका को ठेस की टीज बुझ गई जान पड़ी, बोले : "तो क्यों परेशान हो भला?"

विकल मुस्कराया : "काश, मैं जानता होता!"

उसने कह तो दिया यह, परन्तु उसका अंतर्मन उससे बोला, 'तुझे नहीं मालूम? काका से भी नहीं बतयेगा?' अन्तर्मन की इस आवाज़ ने उसे चेतावनी-सी दी, परन्तु साहस करके भी वह काका से कह न सका।

तनिक देर की निस्तब्धता के बाद काका ने कहा : "भैया, मुझे तुम से बहुत शिकायत है। तुम मेरा कहना नहीं मानते। याद है न एक बार मैंने तुमसे कहा था, कि तुम रात-रात भर बेला बजाया करोगे, तो मैं भी नहीं सोऊंगा।"

"तो क्या..." विकल ने कहना शुरू किया, परन्तु बीच में ही काका ने कहा : "हाँ, मैं तीन रातों से बराबर जग रहा हूँ, और तुम्हारे बेला का करुण राग सुन रहा हूँ।"

"तुम क्यों जागते हो, काका?" विकल ने जैसे अपनी ग़लती का अनुभव करते हुए अनुरोधपूर्ण स्वर में कहा : "नींद नहीं आती?"

"हाँ, भैया, तुम्हें जागता पाता हूँ, तो मेरी भी नींद भाग जाती है।"

इतना स्नेह! विकल ने स्वयं को अपराधी महसूस किया।

"पर तुम रात-रात भर बेला क्यों बजाते हो, भैया?" काका ने जैसे उलाहना दिया : "तुम्हें अपने शरीर की कुछ चिन्ता नहीं?"

विकल मौन रहा।

"ज़रा मेरे साथ आओ।"

काका के साथ चलकर वह किताबों की आलमारी के सामने पहुँचा। ...की भाषा और साहित्य की मूल्यवान पुस्तकों पर धूल की परत जम

गई थी। विकल का मुख उन्हें देखकर आप से आप झुक गया।

"कब से इन्हें नहीं छुआ?" काका ने कहा।

विमल मौन रहा।

"मैं बताऊं। चार महीने हो गये जब तुमने किताबों को आखिरी बार छुआ था," काका ने कहा: "पता नहीं तुम्हें क्या हो गया है? हर समय बस बेला। जैसे बेला बजा कर ही डॉक्टरेट पा जाओगे। अमल भी कई दिनों से नहीं आया, उससे कुछ ऊटपटाँग बात कह दी होगी।"

विकल फिर भी मौन रहा।

"इसमें सन्देह नहीं," काका ने कहा: "कि तुम्हारे बेला के तार अधिक चमकने लगे हैं, और एक-दो जगह हाथ के पसीने से उसका रंग भी छूट गया है, और तुम बजाने भी बहुत अच्छा लगे हो, पर डाक्टरेट तो इससे नहीं मिलती। उसके लिये तो तुम्हें पुस्तकों के समुद्र में डूबकर एक नया मोती निकालना पड़ेगा।"

काका की बात विकल को अच्छी नहीं लगी। वह पढ़ता है, या बेला बजाता है, या कुछ और व्यसनों में अपना समय गंवाता है, इससे काका को क्या मतलब? वे उसके नौकर हैं, और उनका काम है केवल उसकी सेवा करना। इसे छोड़कर वे यदि उसके अभिभावक बनना चाहते हैं, तो वह सहन नहीं कर सकता। परन्तु यह सब सोचकर भी वह उत्तेजित नहीं हुआ, वरन् तनिक देर पश्चात् शान्त स्वर में बोला: "बड़ी प्यास लग रही है, काका।"

काका ने पानी लाकर दे दिया, और कमरे से बाहर चले गये। उन्होंने धूप में बाल नहीं सुखाये थे। वे समझ गये, विकल को उनकी बात अच्छी नहीं लगी। परन्तु यह महसूस कर उन्हें दुःख हुआ। क्यों हुआ? उनकी आंखों में करुण मुस्कान तैर उठी। कमरे का द्वार विकल ने अन्दर से बन्द कर लिया।

कमरे में अकेला रह गया विकल, तो कुछ देर तक उसके विचार काका के चहुं ओर मंडराये, और तब छिटक कर अलग हो गये। आलमारी में रक्खे 'केस' पर उसकी दृष्टि पड़ी। धीरे-धीरे चलकर उसके पास गया, और उससे बेला निकालकर बड़े दुलार से यंत्र को देखने लगा। बड़े स्नेह, बड़ी कोमलता से उसके उस पर हाथ दौड़ाया, फिर गज़ फेरा, कोई तार ढीला मालूम पड़ा, तो खूंटी घुमाकर उसे कस दिया। कई मिनट तक उसे देखता रहा। खिड़की से बाहर आकाश पर भी, जहाँ अभी कुछ देर पहले राजीव की आकृति उसे बनी हुई मालूम पड़ी थी, उसकी दृष्टि जा पड़ी। तब नासापुटों से एक गम्भीर निश्वास निकला, और सहसा हाथ के कम्पन से गज तारों से रगड़ खा गया, और स्वर निकला—

रे ग रे स, नि ध़ प़ रे...

दूसरी ही मिनट राग प्रवाहित होने लगा—

स, रे ग प, ग म रे ग रे स, ऩि स ध़ नि रे^{ग} स।

बहुत देर बाद जब वह बिल्कुल लीन होकर, 'झाला' बजाने लगा, तो किसी ने उसके कमरे का द्वार जोर से भड़भड़ाया। विकल झल्ला उठा। जी में आया कि वह कभी किवाड़ न खोले, कभी न खोले, और यदि पुकारने वाला अमल के अतिरिक्त कोई और होता, तो वह खोलता भी न, परन्तु अमल के लिये कैसे द्वार बन्द रखता!

अन्दर प्रवेश कर अमल ने कहा : "आध घन्टे से द्वार भड़भड़ा रहा हूँ, अब जाकर तुमने सुना!"

"मुझे दुःख है।"

अमल को विकल का स्वर सुनकर आश्चर्य हुआ। ऐसा रुक्ष तो वह कभी भी न रहता था।

"क्या बात है ?" उसने पूछा : "तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है क्या ?"

"नहीं तो।"

"फिर क्या हो गया है ? ऐसी सूरत क्यों बना रक्खी है ? कब से दाढ़ी नहीं बनाई ?"

विकल क्या उत्तर देता, चुप रहा।

उसके पास खिसककर बहुत आग्रह और स्नेह से अमल ने पूछा : "क्या हो गया है रे तुझे, विकल ?"

"कुछ तो नहीं।" विकल के अधरों पर शुष्क मुस्कान दौड़ी।

"दीदी की तबियत ठीक नहीं ?"

"नहीं वे सकुशल हैं।"

"शैल जी ?"

"ठीक हैं।"

"काका ?"

"वह देखो, तुम्हारी आवाज़ सुनकर इधर ही आ रहे हैं।"

"फिर तुझे क्या हो गया है ? चार-पांच दिन हो गए तू अभ्यास भी नहीं कर रहा है..."

"नहीं, अमल बाबू," बेचू काका पास आ गए थे, अमल की बात सुनकर बोले : "रात-रात भर भैया अभ्यास के अतिरिक्त और करते ही क्या हैं ? सच, अमल बाबू, बड़ी शक्ति है भैया में, रात भर बजाने पर भी हाथ नहीं थकता।"

अमल ने विकल की ओर देखकर कहा : "क्यों विकल ? तुमने मुझे बताया नहीं ?"

विकल ने उत्तर नहीं दिया। मुस्कराकर रह गया।

काका ही बोले : "हाँ, अमल बाबू, भैया आजकल इतना अभ्यास करने लगे हैं, कि उन्हें किताबें उलटने का भी समय नहीं मिलता, न

जाने कितनी धूल जम गई है आलमारी में।"

विकल के कंठ से निकला : "काका!"

"हाँ, भैया, पानी पिओगे क्या? अभी लाया।" कहते हुए बेचू काका फिर कमरे से बाहर चले गये।

विकल परास्त हो गया। मौन रहकर जाते हुए काका को देखता रहा।

"विकल," अमल ने कहा : "काका सच कहते थे?"

"क्या?" विकल ने अनजान बनते हुए पूछा।

"यही कि तुमने इधर अपनी किताबों को हाथ भी नहीं लगाया?"

"हाँ, अमल, काका ठीक कहते थे। मैं इधर पन्द्रह-बीस दिन से कुछ नहीं पढ़ सका हूँ।"

"क्यों?"

"मुझे नहीं मालूम। मन सब चीज़ों से बिल्कुल उचट गया है। लगता है बेला बजाता रहूँ, और शून्य में निहारता रहूँ।"

अमल ने आश्चर्य से विकल को देखा। यह विकल कितना बदल गया है, उसने सोचा; पर क्यों? इस 'क्यों' का उत्तर वह कोशिश करने पर भी नहीं खोज पाया।

"विकल," उसने कहा : "यह उलझन क्यों?"

"हां, उलझन ही तो है," विकल ने एक लम्बी सांस लेकर कहा : "कितना प्रयत्न करता हूँ कि सुलझ जाए, परन्तु यह है कि उलझन ही बनी रहना चाहती है।"

अमल को विकल का कथन केवल शब्दों का जाल भर मालूम पड़ा, उसने कहा : "मैं समझा नहीं।"

विकल हंसा : "समझ कर भी क्या करोगे? इस उलझन को सुलझाने का मुझे ही प्रयास करने दो, केवल मुझे, और मुझे विश्वास है कि मैं सफल होऊंगा।"

"विकल, तुम सीधे साफ़ शब्दों में बातचीत नहीं करोगे ?"

"सुलभ्क पाएगी, तो अवश्य करूंगा । अभी तो मेरा दिमाग़ ही मेरे अधिकार में नहीं है ।"

"तुम्हें क्या हो गया है ?"

"काश मैं जानता होता !"

कुछ देर की निस्तब्धता के पश्चात् अमल ने कहा : "विकल, तुम बदल रहे हो, तुम रोज़ बदलते जा रहे हो । मुझे भान होता है कि कोई अदृश्य शक्ति तुम्हें मुझ से दूर खींचे ले जा रही है । यह अनुभव करके मुझे कितना कष्ट होता है कि मेरा एकमात्र अभिन्न मित्र अकारण ही मुझ के विलग हो रहा हैयह तुम क्या जानो !..."

"अमल !" विकल सहसा चीख़ पड़ा : "यह तुम क्या कह रहे हो ? कौन कहता है मैं तुमसे दूर जा रहा हूँ ? कौन कहता है, मैं दीदी, काका किसी से दूर जा रहा हूँ ? नहीं, अमल, मैं अब भी तुम्हारे उतने ही पास हूँ, जितना पहले था, और भविष्य में भी रहूँगा ।"

"कहता कोई नहीं है, विकल," अमल ने उत्तर दिया : "मेरे अन्तर में यह अनुभूति उठती है कि तुम मुझ से दूर जा रहे हो। पर यदि तुम्हारा कथन सत्य है, तो मुझसे बढ़कर सुखी व्यक्ति संसार में दूसरा नहीं है ।"

"अमल," विकल ने कहा : "हम लोग जीवन भर साथ रहेंगे, कभी भी अलग नहीं होंगे ।"

अमल मुस्कराया ।

"ईश्वर करे ऐसा ही हो, हमें कभी अलग न होना पडे, परन्तु साथ रहने वाले व्यक्ति तो एक दूसरे पर पूरा विश्वास रखते हैं न ?"

"हां ।"

"पर तुम्हें मुझ पर पूर्ण विश्वास कहां है ?"

"क्यों ? कैसे नहीं है ?"

"होता तो यह न बताते कि तुम्हारे मन में क्या कसक रहा है ? होता तो शब्दाडम्बर से मुझे बहलाने का प्रयास न करते ..."

"मुझे स्वयं नहीं मालूम, अमल" विकल ने विरोध किया : "कि किस कारण मैं परेशान रहता हूँ आजकल। जिस क्षण मालूम हो जायगा, तुम्हें ही सबसे पहले बताऊंगा।"

अमल का विकल का विरोध निर्बल जान पड़ा, परन्तु उसने फिर कुछ कहा नहीं, बोला : "जैसी तुम्हारी इच्छा।"

क्षण भर को मौन रहा। तब अमल ने कहा : "दस दिन से डिपार्टमेंट भी नहीं आये तुम ? आज शाम तो आओगे ही ?"

विकल चौंका : "क्यों ?"

"क्यों ?" अमल ने उत्तर दिया : "आज 'मीटिंग' में तुम्हें 'पेपर' पढ़ना है या नहीं ?"

विकल सहसा कुछ उत्तर न दे सका। 'पेपर' पढ़ने वाली बात तो वह बिल्कुल भूल गया था। अभी तक उसे तैयार करना तो दूर रहा, उसके लिये किताबें भी नहीं देखी थीं।

"चुप क्यों हो गये ?" अमल ने दोहराया : "तो तैयार है न 'पेपर' ? साढ़े-पाँच बजे तक पहुँच जाओगे ?"

बड़ी कठिनता से विकल कह पाया : "मैं नहीं आ सकूंगा, अमल।"

"क्यों ?"

"मैंने 'पेपर' नहीं तैयार किया। मन नहीं लगा। पढ़ ही नहीं पाया। प्रोफेसर देव से मेरी ओर से क्षमा मांग लेना। कह देना, बुख़ार आ जाने के कारण वह नहीं आ सका।"

"और 'मीटिंग' ?"

विकल चुप हो गया। 'मीटिंग' में केवल उसका 'पेपर' पढ़ा जाना था, और उसी पर विवाद होना था। वह कुछ उत्तर न सोच सका।

"मैं ऐसा करूं", अमल ने एक प्रस्ताव रक्खा : "कि अपना एक

'पेपर' तुम्हारे नाम से पढ़ दूं ?"

विकल के आत्मसम्मान को चोट लगी, आहत-सा होकर बोला : "ऐसा मत करना। प्रोफेसर देव से कह देना कि 'पेपर' नहीं लिख सका, इस कारण नहीं आया।"

"तुमने मुझे बिल्कुल गलत समझा, विकल," अमल ने गंभीर, और कुछ करुण स्वर में कहा : "मेरा यह मतलब कतई नहीं था। मुझे क्षमा करो। मैं नहीं सोचता था कि मेरी साधारण सी बात का तुम पर ऐसा प्रभाव पड़ेगा।"

वह जाने को उठ खड़ा हुआ।

"'तुम भी मुझे गलत मत समझो, अमल," विकल ने कहा : "मैं क्षणिक आवेश में आकर कह गया था। मैं ठीक साढ़े-पाँच बजे वहाँ पहुँच जाऊंगा।"

अमल ने अजीब-सी दृष्टि से एक बार विकल को देखा और चला गया। विकल ने बेला 'केस' में रखकर आलमारी में रख दिया। किताबों के समीप पहुँचा। जैसे बड़ी पीड़ा से उन्होंने विकल को देखा। विकल के हृदय में उनके प्रति स्नेह उमड़ आया, और आलमारी खोल कर उस ने उन्हें धूल साफ़ करके सम्हाल कर रक्खा। फिर तीन-चार मोटी-मोटी किताबें लेकर मेज़ पर बैठ गया। उसे पाँच बजे तक 'पेपर' तैयार कर ही डालना है। वह पुस्तकों में डूब गया।

उस के समीप खड़े होकर बेचू काका ने उसे पुस्तकों में लीन देखा तो उनका मानस हर्ष से उफन उठा।

एक सप्ताह तक विकल रात-दिन पुस्तकों में डूबा रहा। इतना कि अलमारी में रखे बेला की भी याद न रही। बेला के केस पर दृष्टि उसकी अवश्य पड़ती, परन्तु ठहरती नहीं, फिसलकर पुस्तकों की आलमारी में पहुँच जाती। उसके मस्तिष्क में फिर यह विचार दृढ़ हो गया था, कि उसे डॉक्टरेट लेनी ही है।

हां, शैल की स्मृति तो सदा ही मानस में कसकती रहती थी, उस बीच में भी कसकती रही। हर तीसरे दिन उसका एक बड़ा-सा पत्र आ जाता, बहुत प्यारा पत्र। वह भी जवाब में उतना ही लम्बा पत्र लिखता।

इस एक सप्ताह में अमल कई बार आया, परन्तु उसे पुस्तकों में उलझा देखकर बेला का प्रस्ताव भी न करके चला गया। शीघ्रता में लिखा हुआ विकल का 'पेपर' बहुत अच्छा बन पड़ा था, और सभी शिक्षकों एवं सहपाठियों ने एक स्वर से उसकी प्रशंसा की थी। उसी सफलता से उत्साहित होकर वह अध्ययन में डूब गया था।

उसने कैलेंडर की ओर देखा—दस अप्रैल। अगस्त में उसे अपनी 'थीसिस' लिखकर देनी ही होगी, नहीं तो एक वर्ष के लिए बात टल

जाएगी। इस बार के दीक्षांत समारोह में उसे अवश्य 'डिग्री' मिलनी ही चाहिए।

घड़ी ने दस का घंटा बजाया। उसकी आवाज़ हवा में डूबी ही थी कि काका ने कमरे में प्रवेश करते हुये कहा : "भैया, ये चिट्ठियां आई हैं।"

विकल ने हाथ बढ़ाकर पत्र ले लिए। एक लिफ़ाफ़ा आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस का था, जिसमें लिखा था कि उसकी वांछित पुस्तक पंद्रह दिन बाद भेज दी जायगी। दूसरा बम्बई के कला केन्द्र का बेला वादन का निमन्त्रण था। मुस्करा कर उसने उन दोनों को एक ओर खिसका दिया। दो परिचितों के पोस्टकार्ड थे, उन्हें भी सरका कर एक लिफ़ाफ़ा उसने अपने हाथ में ले लिया। पत्र दीदी का था। आशीर्वाद देने और कारबार की कुछ बातें लिखने के बाद उन्होंने लिखा था :

"मैंने वकील साहब को पत्र लिख दिया है कि तू इकीस तारीख को शैल को विदा कराने बांदा पहुँचेगा। तुझे भी लिख रही हूँ। वे सब तैयारी कर रखेंगे। तू मत वहां जाना भूल जाना। और शैल को लेकर सीधे कानपुर आना। समझे?"

"क्या लिखा है दीदी ने, भैया?" काका ने आतुर स्वर में पूछा : "वे इलाहाबाद आरही हैं क्या?"

"नहीं काका, तुम्हारे लिए उन्होंने एक काम लिखा है।" विकल ने कहा।

"क्या भैया?"

"इकीस तारीख को तुम्हें बांदा जाना है, और वहां से विदा कराकर कानपुर।"

"मुझे!" काका ने जैसे आश्चर्य से कहा, फिर हंस पड़े : "ठीक ही तो लिखा है दीदी ने, तुम्हारे साथ आखिर मुझे ही तो जाना पड़ेगा।"

विकल मुस्कराया। काका प्रसन्न होकर कमरे से बाहर चले गये।

कुछ देर पहले ही वह एक पत्र शैल को डाल चुका था, पर आनन्द का ज्वार सम्हाल न सकने के कारण फिर लिखने लगा।

पत्र पूरा करके लिफ़ाफ़े में बन्द किया और पता लिखा। तब काका को बुलाकर उनसे कहा : "मैं जरा बाहर जा रहा हूँ। पन्द्रह बीस मिनट में लौट आऊंगा।"

"ऐसी धूप में, भैया?"

"हां, काका, अभी तो लौट आऊंगा।"

पत्र जेब में रखकर वह बाहर निकल गया।

शैल का संग कितना मादक था। सोने के दिन और चांदी की रातें कितनी जल्दी उड़ गये थे, कभी लौट कर न आने के लिए। उन दिनों वह सब कुछ भूल गया था, अमल को, बेला को, राजीव को, सभी को भूल गया था।

राजीव!

आख़िर राजीव चला कहां गया? पिछले एक सप्ताह को छोड़ कर लगभग पन्द्रह-बीस दिन तक वह कितना परेशान, कितना व्यथित रहा है राजीव के बिना! अगर उस दिन 'एसोसियेशन' की 'मीटिंग' में न गया होता तो पिछले एक सप्ताह पुस्तकों में न डूबा रह पाता और राजीव की स्मृति से मुक्ति न पाया होता। और परिणामतः अब तक अगर पूरा नहीं तो आधा पागल तो ज़रूर हो गया होता।

पर वह गया कहां? और क्यों गया? कभी तो उसका बेला सुनने को इतना आतुर था कि उसकी अनुपस्थिति में डेढ़ माह तक घर का चक्कर लगाता रहा था, और अब उसके रात-रात भर बजाने पर भी नहीं आता। वह क्या बीमार पड़ गया है, नहीं तो वह ज़रूर उसके पास आता। और वह भी कैसा पागल है, कि इतने दिन हो गये, उसने राजीव से पता तक नहीं पूछा। पता मालूम होता तो वह खुद जाकर देख आया होता। उसने निश्चय कर लिया कि राजीव जब अगली बार आयेगा

तो वह पता जान लेगा—क्या जाने कब कैसी जरूरत पड़ जाय?

राजीव से उलझा हुआ ही वह कितनी दूर बढ़ गया उसे ध्यान न रहा। घर से लगभग सौ गज़ की दूरी पर जार्जटाउन का पोस्ट आफिस था। वहीं खत डालना था। पर विचारों में मग्न वह एक चौराहा और पार कर गया। सहसा ध्यान आया, तो वापस लौटा, और पोस्ट आफिस पहुँचा। लिफ़ाफ़ा 'लेटर बक्स' में डाल घर की ओर लौट चला। विचारों की टूटी शृंखला फिर जुड़ गई।

यह राजीव भी कैसा आश्चर्यजनक व्यक्ति है! कुछ मुलाकातों में ही उससे कितना आत्मीय बन गया, जैसे युगों-युगों की पहचान हो। और कितना आकर्षक व्यक्तित्व है उसका। कितनी शीघ्र उसके मन पर राजीव की विचार-धारा का प्रभाव पड़ा था। उसने कहा था विकल का एक लक्ष्य होना चाहिये, केवल एक! या तो वह डाक्टरेट के लिये पढ़ ही ले, या बेला पर अधिकार प्राप्त कर ले। उसने बेला पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने को ही अपना लक्ष्य बनाया था, और उसके बाद पन्द्रह-बीस दिन तक लगातार दिन-रात 'जयजयवन्ती' में ही डूबा रहा था, पर उसे राह दिखाने के पश्चात् राजीव फिर नहीं आया।...क्यों नहीं आया?

वह फिर व्याकुल हो उठा। लगा, अगर वह जल्दी ही राजीव से नहीं मिला, तो पागल हो जायेगा।

फाटक में घुसा, तो अन्दर से आता हुआ अमल मिला। दोनों ने हाथ मिलाये।

"काका कह रहे थे," अमल ने कहा: "कि तुम पन्द्रह-बीस मिनट को बाहर चले गये हो। मैं लगभग पचास मिनट बैठा रहा। अब एक चिट लिखकर जा रहा था।"

"तो अब तो बैठोगे न?" विकल मुस्कराया।

"हां! ज़रूर!" फिर ज़रा रुक कर बोला: "काका से सुना आज-कल तुम बहुत मेहनत कर रहे हो।"

"मेहनत क्या कर रहा हूँ, यह समझो कि चार महीने बाद पढ़ने की कोशिश कर रहा हूँ।" विकल ने उत्तर दिया।

अमल हंसा : "थीसिस कब लिखना शुरू करोगे ?"

"अभी तो पढ़ ही नहीं पाया, 'थीसिस' लिखना तो दूर की बात है। प्रोफेसर देव से बहुत सी बातें पूछनी हैं।"

"तो चले क्यों नहीं जाते किसी दिन उनके पास ? वे खुद भी तुम्हारे बारे में पूछ रहे थे।"

"कल सुबह जाऊंगा। तुमने तो लिखना शुरू कर दिया होगा ?"

"अभी तो नहीं," अमल ने उत्तर दिया : " पर दो-चार दिन में ही कर दूँगा।"

"बड़ी खुशी की बात है। गुडलक !"

"थैंक्यू !"

दोनों एक दूसरे की ओर देखकर मुस्करा पड़े।

"ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद कि तुम फिर पहले की तरह हो गये।" अमल ने कहा : "बीच में तुम्हें देखकर तो मुझे बहुत चिन्ता हो गई थी। उतना खिन्न, उतना उदास, उतना वीतराग मैंने तुम्हें कभी नहीं देखा था। परन्तु क्यों ऐसा हुआ था, विकल ?"

पहले भी अमल ने इसी आशय का प्रश्न पूछा था, और विकल ने उत्तर नहीं दिया था। इस समय भी वह टाल गया : "बस, समझो 'मूड' ही बिगड़ गया था। क्यों, यह मैं खुद भी अभी तक नहीं जान पाया हूँ। फिर तुम्हें क्या बताऊं ?" असलियत यह थी कि राजीव के विषय में वह किसी को कुछ न बताना चाहता था। चाहता था कि राजीव केवल उसी का रहे। कोई तीसरा उनकी अभिन्नता के बारे में जाने भी नहीं।

अमल ने इसी एक बात को अधिक पूछना ठीक न समझ बातचीत का विषय बदल दिया : "याद है न, एक युग बीत गया जब हम लोग साथ साथ बेला और बाँसुरी की स्वर धारा में डूब डूब गये थे ?"

"हाँ, मुझे अच्छी तरह याद है, अमल।"

"पिछले दिनों में कई बार मैं तुम्हारे पास आया, पर हर बार तुम्हें पुस्तकों में उलझा देखकर कहने का साहस न कर सका।"

"तो आओ न आज शाम को।"

अमल के मुख पर प्रसन्नता की हलकी सी रेखा आई। "आऊंगा," उसने कहा : "ठीक आठ बजे।"

अपने वादे के अनुसार अमल शाम को ठीक आठ बजे विकल के यहाँ पहुँच गया। कुछ इधर-उधर की बातों के बाद दोनों स्वर-लहरी में डूब-डूब गये। लगभग डेढ़ घंटे बाद जब गज तारों से हटा, और बांसुरी होंठों से, तो अमल ने कहा : "सचमुच, विकल, तुम अब बहुत अच्छा बजाने लगे हो। तुम्हारा साथ देने के लिये मुझे अब बहुत रियाज़ चाहिये।"

विकल मुस्कराया। उसने मन में कहा कि यह राजीव का प्रभाव है, जिसे अमल ने स्वप्न मात्र, भ्रम ही समझा था। प्रकट में बोला : "क्या सचमुच?"

"हाँ, विकल, तुम्हारे तारों का स्वर अब इतना मर्मस्पर्शी होता है, कि उसे सुनकर आँखें पिघल पड़ने को हो आती हैं। अब मैं तुम्हारे साथ बाँसुरी तब तक नहीं बजाऊंगा जब तक तुम्हारे साथ संगत करने लायक न हो जाऊंगा।"

अमल चला गया, तो विकल अपने में ही उलझ गया। पुस्तकों पर दृष्टि डाली, पर छूने का मन न हुआ। अन्यमनस्क हो उठा। अमल कहता था, कि वह अब उसके साथ बाँसुरी नहीं बजायेगा। कारण, विकल बहुत अच्छा बजाने लगा है। और इतना अधिकार पर सिर्फ़ राजीव के कारण पा सका है। राजीव जैसे उसकी प्रेरणा, उसका उत्साह बन गया है. और क्रमशः उसकी कला ही बनता जा रहा है! काश, वह

समय उसके पास होता ।

एकाएक उसे सुनाई पड़ा : "शैतान की याद करो और वह हाज़िर! कहो विकल, मज़े में तो हो?"

"राजीव!" उच्छ्वसित हो विकल लगभग चीख़ पड़ा ।

मुस्कराता हुआ राजीव पास की कुर्सी पर बैठ गया ।

"तुम तो ऐसे गायब हो गये थे, जैसे गधे के सिर से सींग!" विकल बोला ।

"या गंजे के सिर से बाल।" राजीव खुलकर हंसा ।

"कहाँ चले गये थे? इतने दिन तुम नहीं आये, मैं बड़ा अन्यमनस्क रहा।" विकल ने कुछ व्यथित स्वर में कहा ।

"सचमुच?" राजीव बोला ।

"हाँ, एक बार तो बेला बजाते हुए मैंने सोचा लिया था कि इस बार अगर नहीं आये तो उसे चकनाचूर कर दूँगा।"

"हाँ!" राजीव मुस्कराये जा रहा था ।

"तुमने जरूर मुझ पर कुछ जादू कर दिया है।" विकल कहता गया : "पहले तो कभी भी ऐसा नहीं होता था।"

"जादू मैंने नहीं किया जनाब! आपके बेला ने मुझ पर किया है।" राजीव बोला : "इसी जादू ने मुझे इतने दिनों के लिये गायब कर दिया था, और काम पूरा हो जाने पर फिर यहीं भटक गया है।"

"क्या मतलब? कौन सा काम?"

"हाँ, अब तुमने कायदे का सवाल पूछा! तो बताता हूँ। याद है, मैंने एक बार तुम से कहा था कि तुम्हारा बेला ज्यादा अच्छा नहीं है?"

"हां, और यह भी कहा था कि तुम मुझे इससे बहुत अच्छा बेला दिला दोगे।"

"ठीक है! और आपको मालूम होना चाहिये कि उसी की खोज मैं रात-दिन करता रहा हूँ। और इतने दिनों की मेरी मेहनत बेकार

भी नहीं गई। मुझे...”

विकल का सम्पूर्ण शरीर सिहर उठा, उत्तेजना से भर उठा, बोला : “कहाँ है वह ?”

“बताता हूं कहां है ; इतनी आतुरता किस लिये ?”

विकल चुप हो गया।

“पहले मुझे तुमसे एक बात पूछनी है। तुम अपने रास्ते से हटे क्यों ?”

“रास्ते से हटा ? नहीं तो !”

“पिछले दिनां मैं तुम्हारे पास नहीं आया, तो क्या तुम समझते हो कि तुम्हारे बारे में मुझे कुछ मालूम ही नहीं ? मुझे सब मालूम है, विकल, इतने दिन तुमने क्या किया है, मैं रत्ती-रत्ती जानता हूँ। तुमने कहा था कि बेला पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना ही तुम्हारा लक्ष्य है, और उसे प्राप्त करने के लिये तुम सदा प्रयत्नशील रहोगे, चाहे सारा जीवन ही तुम्हारा क्यों न बीत जाय, कहा था न ?...”

“और जो मैंने कहा था, वही किया भी...”

विकल अपना वाक्य पूरा न कर सका। बीच में ही उसे रोकते हुए तनिक कड़े स्वर में राजीव बोला : “तुम यह कहने का साहस कर सकते हो ?”

“हां राजीव, मैं लगातार बेला बजाता रहा हूँ, तुम आये ही नहीं...”

“और पिछले एक सप्ताह से जो बेला मौन पड़ा है, वह किसका है ?”

विकल निरुत्तर हो गया।

“विकल, तुम अभी खुद को ही नहीं पहचान पाए हो। अभी तक तय नहीं कर पाए हो कि तुम्हारा लक्ष्य क्या है ? कभी एक ओर झुकते हो, कभी दूसरी ओर। इस तरह कभी भी अपने ध्येय को पा सकने में

समर्थ नहीं होगे। अभी समय है खुद को पहचान लो। गंभीरतापूर्वक विचार करके देख लो, उत्तेजना में कोई काम कर बैठने की ज़रूरत नहीं। अपने को जानो कि तुम क्या हो, फिर अपना लक्ष्य निश्चित करो, और तब...''

और ज्यादा सुन सकने का साहस विकल में नहीं रह गया, अधीर होकर बोला : ''मैं निश्चय कर चुका हूँ, राजीव, और तुम्हें बता भी चुका हूँ।''

''निश्चय है या केवल एक विचार?''

विकल ने राजीव का व्यंग समझा, कहा : ''नहीं, राजीव, निश्चय।''

''दृढ़?''

''हिमालय की तरह।''

''हिमालय की तरह?'' राजीव हंसा : ''वह तो पिघल-पिघल कर बहता है। तुम्हारा निश्चय भी इसी तरह बहेगा?''

''नहीं। मेरा निश्चय हीरे की कनी की तरह दृढ़ है, जो और वस्तुओं को काट देगा, खुद नहीं कटेगा।''

''क्या मैं विश्वास करूं?''

विकल ने राजीव की ओर देखा। वह दृष्टि ही उसका उत्तर थी। राजीव उसे भली प्रकार समझ गया। नरम स्वर में बोला : ''अब मानते हो न कि तुम अपने रास्ते से हट गये थे?''

विकल का सिर झुक गया।

''क्या मैं आशा करूं कि अब कभी ऐसा नहीं होगा?''

''तुम विश्वास करो, राजीव!''

''मैं सन्तुष्ट हुआ,'' राजीव ने कहा : ''अब मैं तुम्हें बता सकता हूँ कि वह सुन्दर बेला मैंने कहां देखा है।''

विकल तो बेला की बात बिल्कुल भूल ही गया था। अब फिर सुन कर पहले की तरह आतुर हो उठा : ''हां, कहां है वह? अभी दिलवा

दोगे ? दाम तय कर आये हो क्या ?"

राजीव हंसा : "फिर पागलपन करने लगे ? अरे बेला लेने तो हम लोग चलेंगे ही । चाहे अभी चलें, चाहे कुछ देर बाद । पहले..."

"अभी क्यों नहीं ?" विकल ने ज़िद की ।

"पहले मेरी पूरी बात सुन लो," राजीव ने उसे बड़े की तरह से झिड़की दी : "ज़रा धीरज से काम लो । जानते हो, कहां है वह बेला ?"

"न जानता हूँ और न जानना चाहता हूँ," विकल ने उत्तर दिया : "मुझे वह बेला चाहिये; उसके लिये फिर चाहे मुझे नर्क में भी क्यों न जाना पड़े ।"

"न जानते हुए भी तुमने सही बात ही कही है, विकल," राजीव ने कहा : "नर्क में तो नहीं, पर उसके पड़ोस में ज़रूर हम लोगों को जाना पड़ेगा ।"

"कहां ?"

"बहुत अंधेरी गली है !" राजीव ने धीरे से कहा ।

"अंधेरी गली ?" विकल के माथे पर सिलवटें पड़ गईं : "क्या मतलब ?"

"नहीं समझे ?" राजीव ने कहा : "बहुत बदनाम मुहल्ले की अंधेरी गली में जाना पड़ेगा हमें ।"

"मैं नहीं समझा, राजीव !"

"तो मैं समझाता हूँ," राजीव ने गंभीरतापूर्वक कहा : "तुम्हारा बेला एक स्त्री के पास है और वह स्त्री एक ऐसे मुहल्ले में रहती है, जिसका नाम सुनकर दिन में तो सब की भौंहें सिकुड़ जाती हैं, पर रात में बाँछें खिल जाती हैं । वहां मजबूरी का व्यापार होता है, और वासना का भी । वहां बेबसी पलती है, और उच्छृंखलता भी । वहां प्राण जलते हैं और चिराग़ भी । वहां शरीर लुटाये जाते हैं, और नोट भी । वहां पहुँच कर

मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता, पशु या दानव हो जाता है। वहां स्नेह, सुख, संतोष नहीं पलते, वहां इनका कोई मूल्य नहीं। वहां तो दानवता अट्टहास करती है और उस अट्टहास से कमरों के चिराग़ बुझ जाते हैं।..."

"तुम रूपहाट की बात कर रहे हो, राजीव?" विकल चीख़ पड़ा।

"हां, विकल, मैं रूपहाट की बात कर रहा हूँ," राजीव का स्वर पहले के समान गंभीर था: "तुम भी चौंक पड़े न उसका नाम सुनकर? सभी चौंक पड़ते हैं। तुम्हारा कोई दोष नहीं। तो बताओ, चल सकते हो ऐसी जगह बेला लेने?"

कुछ क्षणों के लिये विकल चुप रहा। जैसे उसके मानस में विचारों के घात-प्रतिघात हो रहे हों। फिर बोला: "हां, राजीव, चल सकता हूँ। बेला लाने के लिये नर्क में भी चल सकता हूँ।"

राजीव ने स्नेह से विकल को देखा।

"तो अभी चलोगे न उस स्त्री के पास?...क्या नाम है उसका?"

"संध्या।"

"हां तो अभी चलोगे?"

"जैसा तुम कहो।"

"मैं तो जल्दी से जल्दी बेला अपने पास चाहता हूँ। अभी चलो।"

"चलो।"

बक्स खोलकर विकल ने कुछ रुपये निकाले और जेब में रख लिये। कपड़े बदले। तब राजीव से कहा: "चलो।"

दोनों बाहर निकले। तभी घंटाघर की घड़ी ने बारह का घंटा बजाया। रिक्शा मिलने से पहले डेढ़-दो फर्लांग पैदल चलना पड़ा। उसी बीच विकल ने राजीव से कहा: "मैंने कभी नहीं सोचा था, कि मैं कभी पैर रूपहाट में भी रक्खूंगा।"

राजीव मुस्कराया : "मनुष्य कब अपने को पूरी तरह जान सका है ? भविष्य के गर्भ में उसके लिये क्या है, यह भी कब उसे पहले से पता रहता है ? और वास्तव में इसी कारण तो जीवन, जीवन है, रहने योग्य है, नहीं तो उसमें रह ही क्या जाय ? 'मिस्टरी, सस्पेन्स, सरप्राइज़'*— यही तो है मानव जीवन !"

"ठीक कहते हो," विकल ने उत्तर दिया : "व्यक्ति के जीवन में यदि बिल्कुल अनजानी और नवीन घटनाएं न घटित हों, तो मृत्यु के पहले ही हज़ारों बार उसकी मौत हुआ करे।"

राजीव मुस्कराता रहा।

"तो राजीव, ज़ीरो रोड तक का रिक्शा कर लिया जाय," विकल ने एक ख़ाली रिक्शे को आते देखकर कहा : "थोड़ी दूर पैदल चल लेंगे।"

राजीव मुस्कराया : "यही सही। पहली बार जा रहे हो, घबराहट लग रही होगी !"

रिक्शा ज़ीरो रोड पर प्रेम टाकीज़ के सामने रुका। विकल ने रिक्शे वाले को किराया दिया और दोनों कुछ दूर सड़क पर चलने के पश्चात् एक गली में मुड़ गए। गली बहुत संकरी थी, और उसमें प्रकाश का भी समुचित प्रबन्ध न था। परन्तु विकल सोच रहा था, यह उसके लिये अच्छा ही है, इतने कम प्रकाश में उसके पहचाने जाने की सम्भावना नहीं है। उसका हृदय साधारण से अधिक गति से धड़क रहा था, कहीं कोई परिचित मिल गया तो !

उसी गली में कुछ दूर चलने पर एक और अधिक संकरी गली में उन्होंने प्रवेश किया और तब दाहिनी ओर मुड़े। दस क़दम चलने के बाद रुक कर उसने एक आदमी से पूछा : "क्यों भाई, संध्या बाई का मकान कौन सा है ?"

---

* रहस्य कुतूहल, आश्चर्य

"संध्या बाई ?" आदमी के माथे पर सिलवटें पड़ गईं : "कौन संध्या बाई ?"

"वही जो बेला बजाती है !"

"ओह !" आदमी ज़ोर से हंस पड़ा। साफ़ था कि वह शराब पिये था, क्योंकि उसकी चाल, उसके स्वर, उसकी हंसी में भी लड़खड़ाहट थी : "शमा बाई ! संध्या, संध्या कहता था ! शमा बाई बोलो ! वह सामने पीला सा कोठा शमा बाई का ही है ! पर मेरे यार !" आगे बढ़कर उसने अपना एक हाथ उसके कंधे पर रख दिया : "बड़ी मंहगी है वह ! खुदा क़सम, बड़ी मंहगी ! हैं सौ-दो सौ रुपये जेब में या यों ही चले आये ?"

विकल ने उसका हाथ घृणा से झिटक दिया, और आगे बढ़ गया। आदमी लड़खड़ाता हुआ जोर से हंसा, और बेसुरे स्वर में गा पड़ा : "महफ़िल में जल उठी शमा परवाने के लिये !..."

शराबी की आवाज़ उसका पीछा कर रही थी। वह तेज़ी से चलकर जीने पर चढ़ गया। कमरे में एक सुन्दरी युवती बैठी थी, और उसके आस-पास साजिन्दे। उसे देख कर सब ने एक स्वर से कहा : "आइये, हुज़ूर, तशरीफ़ रखिये।"

धीरे-धीरे क़दम रखकर वह कालीन पर बैठ गया। पान से रंगे होठों और भयानक सूरत-शकल वाले साजिन्दों के बीच युवती उसे कांटों में खिले हुए गुलाब सी मालूम पड़ी। एक क्षण को उसके मन में यह विचार आया, कि इस घुटन भरे वातावरण में वह नहीं रह सकता, उसे तुरन्त वहां से चल देना चाहिये, परन्तु फिर याद आया कि वहां वह बेला लेने आया है और उसने अपने मन पर अधिकार किया।

"सरकार, मुजरा होगा ?" सारंगी वाले अधेड़ ने सिर झुकाये हुए पूछा। वह आगे भी कुछ कहने जा रहा था, परन्तु विकल के मुख का

भाव देखकर बीच में ही चुप हो गया।

विकल ने युवती की ओर देखकर कहा : "मुझे संध्या देवी से कुछ काम है। क्या मैं उनसे मिल सकता हूँ?"

युवती ने ध्यान से विकल की ओर देखते हुए उत्तर दिया : "जी, मुझे ही संध्या कहते हैं।" उसकी आंखों का इशारा पाकर साजिन्दे उठ कर कमरे से बाहर चले गये।

"हुज़ूर, पहली ही बार तशरीफ़ ला रहे हैं शायद।" संध्या ने विकल की ओर घूरकर देखते हुए कहा।

"हां, मैं पहली ही बार यहां आया हूँ," विकल ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया : "और अगर आज मेरा काम हो गया, तो फिर कभी आऊंगा भी नहीं।"

"आपको मुझ से काम है?"

"हां।"

"कहिये मैं आपकी क्या ख़िदमत कर सकती हूँ? पान खायेंगे?"

"धन्यवाद, मैं पान नहीं खाता। मैंने सुना है, आप के पास एक बेला है।"

"जी हां। सिगरेट लीजिये!"

"धन्यवाद, मैं सिगरेट नहीं पीता। क्या आप वह बेला मेरे हाथ बेच सकती हैं?"

"बेला...बेच सकती हूँ? अभी तक..."

"मुझे पता लगा है कि आप किसी कारणवश उसे बेचना चाहती हैं।"

"आप से किसने कहा?"

"मेरे इन मित्र ने।" उसने अपने बगल में देखा, राजीव नहीं था। एक क्षण के अन्दर उसकी आंखों ने पूरे कमरे का निरीक्षण कर डाला, परन्तु राजीव कहीं न था। "अरे, राजीव कहां गया!" उसने जैसे अपने

से कहा और उठकर खड़ा हो गया।

संध्या हंसी, बोली : "कहां जा रहे हैं?"

"उसे देखने। कहीं वह नीचे ही न भटक रहा हो!"

संध्या खिलखिला कर हंस पड़ी : "यहां आने की हर कोई हिम्मत नहीं कर सकता, बाबू साहब, आपके दोस्त की हिम्मत जवाब दे गई होगी। आप उन्हें नीचे नहीं पा सकेंगे। लौटते हुए यदि आप चाहें, तो उन्हें अपने घर में करवटें बदलते देख सकते हैं।"

"तुम ठीक कहती हो!" विकल फिर बैठ गया।

"आपने अपने मित्र का क्या नाम लिया था? शायद मैं उन्हें पहचानती होऊं!"

"राजीव।"

"राजीव!" संध्या के मुख से निकला। उसके स्वर में अत्यधिक आश्चर्य था, और था कुछ भय भी।

"क्यों? क्या किसी का राजीव नाम नहीं होना चाहिये?"

संध्या ने जैसे विकल का प्रश्न सुना ही नहीं। अपने में ही डूबी-सी उसने कहा : "क्या आप बता सकते हैं, वे कैसे हैं?"

विकल ने बहुत आश्चर्य से उसकी ओर देखा। उसे वह असाधारण मालूम पड़ी। साथ ही लगा, यह राजीव भी सचमुच कैसा आश्चर्यजनक व्यक्ति है, जिसका नाम सुनकर ही संध्या इतनी विचलित हो उठी है। उसने कहा : "हां, क्यों नहीं बता सकता? बड़ा आकर्षक व्यक्तित्व है उनका, चुम्बक जैसा शक्तिशाली। आभायुक्त मुखमंडल, बड़ी मादक आंखें लम्बी रोमन सेनानियों जैसी नासिका, स्वस्थ शरीर, गोरा रंग, हाथ की लम्बी, पतली अंगुलियां उसकी विशेषताएं हैं। देखने में वह बिल्कुल कलाकार मालूम पड़ता है।"

वह राजीव के विषय में बता रहा था, और उसकी आंखों के सामने राजीव का चित्र उभरता जा रहा था। अपना कथन समाप्त किया, तो

संध्या की ओर देखा, और एकदम स्तब्ध रह गया। वह बिल्कुल पीली पड़ गई थी, जैसे मृत्यु की भयावनी छाया उस पर पड़ गई हो और लाल होंठ समुद्रफेन की तरह श्वेत हो उठे थे, और आंखों की तरलता में भय घुस गया था। एकदम वह कह पड़ा : "अरे, आपको यह क्या हो गया? आपकी तबीयत ख़राब है क्या? आप आराम कीजिये, मैं फिर आ जाऊंगा।"

"मैं बिल्कुल ठीक हूँ," संध्या अपने पर अधिकार पाने का प्रयास कर रही थी : "आप बैठिये, कभी-कभी ऐसा हो जाया करता है। एक गिलास पानी पी लूंगी, तो ठीक हो जाऊंगी।"

उसने बग़ल में रक्खी सुराही से निकाल कर पानी पिया और दो बूंद आंखों में भी लगाया।

"आप से उनकी मुलाकात कब हुई थी?"

"सात-आठ महीने हुए।...आप उन्हें जानती हैं?"

"हाँ, मैं उन्हें जानती हूं। क्या आप निश्चित तारीख़ बता सकते हैं, जब वे आपसे पहली बार मिले थे?"

मन ही मन हिसाब लगाने के बाद विकल ने उत्तर दिया : "नौ-दस सितम्बर थी शायद!"

"आठ तो नहीं?" संध्या ने आतुर होकर पूछा।

"शायद आठ ही रही हो," विकल ने उत्तर दिया : "कुछ ठीक याद नहीं।"

"और आप दोनों तब से रोज़ मिला करते हैं?"

"कोई ज़रूरी नहीं, परन्तु मित्र हम लोग उसी दिन से हो गये थे, जब पहली बार मैंने उसे देखा था। उसे मेरा बेला बड़ा अच्छा लगता है। घंटों मुग्ध होकर सुनता रहता है, और उसकी उपस्थिति में मैं स्वयं अपने को भूल कर बजाने लगता हूँ और साधारण से बहुत अधिक अच्छा बजाता हूँ।"

"आप बेला बजाते हैं ?"

"हाँ ।"

"कौन सा राग आपको विशेष प्रिय है ?"

"जयजयवन्ती ।"

"जयजयवन्ती !" संध्या होंठों में फुसफुसायी : "जयजयवन्ती !"

वह उठ खड़ी हुई ।

"एक मिनट में आई," उसने कहा और अन्दर चली गई ।

कुछ क्षणों बाद जब वह लौटी, तो उसके हाथ में एक अखबार था । उसे मोड़ कर उसमें छपी एक फ़ोटो विकल के सामने रखते हुए उसने कहा : "यही हैं न आपके राजीव ?"

विकल ने फ़ोटो देखी । प्रसन्नता से कह पड़ा : "हाँ, यही है मेरा राजीव ! पर मुझे लगता है, आप भी उससे बहुत प्रभावित हैं ।"

कुछ कहे बिना ही संध्या ने अख़बार की तह खोल दी । मोटे-मोटे अक्षरों में एक समाचार प्रकाशित था । उसे पढ़ कर विकल चौंक पड़ा :

"प्रसिद्ध बेलावादक की शोचनीय दशा में मृत्यु ।

"इलाहाबाद के प्रसिद्ध बेलावादक श्री राजीव आनन्द का कल रात में एक बजे देहावसान हो गया । कई महीनों से वे कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में रह रहे थे, क्योंकि उनका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था । डाक्टरों का कहना था कि उन्हें राजयक्ष्मा हो गया था, और उन्होंने उन्हें वायु परिवर्तन की सलाह दी थी ।

"युवक राजीव आनन्द के निधन से भारतीय संगीत की जो हानि हुई है, वह शायद कभी भी पूरी न हो सके ।"

विकल ने देखा, वह दस सितम्बर का अख़बार था और समाचार

नौ तारीख़ को श्रीनगर से भेजा गया था।

असीम आश्चर्य और घबराहट से कई मिनट तक वह उसे देखता रहा। कई बार पूरे समाचार को पढ़ गया। कई बार फ़ोटो को देख गया—यह उसका राजीव ही है न! उसके मस्तिष्क में द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ—क्या यह सम्भव है? अभी कुछ देर पहले तक राजीव उसके साथ था, और इस अख़बार में लिखा है कि गत आठ सितम्बर को श्रीनगर में राजयक्ष्मा के कारण उसकी मृत्यु हो गई! नहीं, यह असम्भव है, अविश्वसनीय! राजीव अभी जीवित है! अख़बार वाला राजीव आनन्द कोई और होगा। परन्तु फ़ोटो? निस्संदेह फ़ोटो वाले राजीव और उसके राजीव में ज़रा भी अन्तर नहीं, चेहरे की एक-एक रेखा बिल्कुल एक-सी है, परन्तु दो व्यक्तियों का एक ही सूरत-शक्ल का होना असम्भव नहीं।

"किस ख्याल में डूब गये, बाबू साहब?" उसकी विचार धारा को भंग करते हुए संध्या ने पूछा।

"यह अख़बार झूठ कहता है!" विकल ने कहा।

संध्या मुस्कराई: "अख़बार झूठ नहीं कहता, बाबू साहब, राजीव सचमुच अब इस धरती पर नहीं हैं।"

उसके नासापुटों से एक गम्भीर निश्वास निकला: "कितना चाहती हूँ आज वे जीवित होते!"

विकल की आँखें अचानक संध्या की आंखों से जा मिलीं। संध्या के नयनों में न मालूम कितना दर्द, कितनी पीड़ा तरल हो उठे थे। उसके मुख पर विषाद की गहरी छाया थी। उसे प्रतीत हुआ, यह संध्या अवश्य किसी प्रकार राजीव से संबन्धित है या थी, और किसी कारण राजीव और उसका सम्बन्ध विच्छेद हो गया, और जब राजीव नहीं रहा, तो वह उसकी याद में व्यथित रहने लगी।...परन्तु उसके राजीव और संध्या के राजीव आनन्द में अन्तर है!

"हाँ," उसने कहा: "इस समाचार के अनुसार बेलावादक राजीव

आनन्द अब जीवित नहीं।...पर क्या आप उन्हें जानती थीं?"

संध्या की तरल आँखें बूंद का आकार ग्रहण कर ढुलक पड़ने को हुईं, पर कोशिश करके उसने उन्हें रोक लिया। गंभीर, पीड़ित स्वर में उसने उत्तर दिया: "हाँ, बाबू साहब, मैं उन्हें अच्छी तरह जानती थी। उन्हीं के कारण तो मैं इस नर्क में सड़ रही हूँ।"

"राजीव आनन्द के कारण?" विकल को आश्चर्य हुआ।

"हाँ, बाबू साहब, राजीव के कारण!" उसकी आंखों का पानी अन्ततः ढुलक ही पड़ा: "एक समय था जब मेरे लिये वे सर्वस्व थे, और मैं उनकी प्रेरणा थी, साध थी, आकांक्षा थी।...फिर मुझे कुछ हो गया।... क्या हो गया?" उसकी आंखों में विक्षिप्तों जैसी चमक आ गई। "मैंने क्या किया?...मैंने उन्हें छोड़ दिया। मैंने उन्हें त्याग दिया!...सहसा मुझे लगा उनके साथ मेरा जीवन सुखपूर्वक नहीं व्यतीत हो सकता।...क्यों लगा, मैं नहीं जानती!...मैंने उनसे नाता तोड़ लिया। एक बार उन्होंने कहा, 'तुम्हें क्या हो गया है, संध्या? तुम किस विचार में पड़ी रहती हो आजकल?' उन्होंने मेरा हाथ पकड़ना चाहा, तो मैं पीछे हट गई। कहा मैंने, झूठ कहा, 'मुझसे दूर रहो। मेरी मंगनी हो चुकी है।' वे आकाश से गिरे, 'कब?' 'कल', मैंने उत्तर दिया। उन्होंने एक फिर मेरी ओर बढ़ने का प्रयत्न किया, 'क्या मैं विश्वास करूं?' न मालूम कैसे मैं इतनी हृदयहीन हो गई थी, मैंने पाषाण बन कर उत्तर दिया, 'अविश्वास का कोई कारण?' 'है' उन्होंने कहा, 'हमारा प्रेम और तुम्हारी प्रतिज्ञाएँ।' उन्हें मेरी बातों से, मेरे व्यवहार से कितनी पीड़ा हो रही थी, इसका मैं अनुमान लगा सकती थी, फिर भी हृदयहीना के समान मुस्कराकर बोली, 'अपना सुख-दुःख, भला-बुरा मैं अधिक अच्छी तरह समझती हूँ।' बहुत देर तक उनके कंठ से स्वर न फूटा, फिर बोले, 'कौन है वह भाग्यशाली?' जैसे व्यंग से मैंने उत्तर दिया, 'बम्बई के एक मिल मालिक।' एकाएक वे ज़ोर से हंस पड़े,

'ओह ! धन तो सदा भाग्यशाली होता ही है ! मैंने कुछ और सोचा था, पर वह मेरी ग़लती थी, मैंने तब तुम्हें पहचाना न था। अब पहचान गया, अच्छी तरह पहचान गया।' कई क्षणों तक पैनी दृष्टि से मेरी ओर देखते रहे, और उसके सामने मुझे बड़ी बेचैनी मालूम पड़ने लगी। सहसा उन्होंने गंभीर स्वर में कहा, 'संध्या, मैं तुम्हारे सुखी होने की कामना नहीं करूंगा। सुखी ? हुँह, मेरे जीवन को ठीकरे से भी तुच्छ समझ कर तुम उसे ठुकराकर स्वयं सुखी होना चाहती हो धन की गोद में ! और मैं कामना करूं ?' वे ठठाकर हंस पड़े, और उनका अट्टहास सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। उन्होंने कहा, 'मैं कामना करूं ? मैं शाप देता हूँ कि जब तक जीवित रहो, नर्क की आग में तिलतिल कर जलो।' वे चले गये। उनका कठोर स्वर अब भी मेरे कानों में गूंज रहा है। अब भी उसकी याद कर मैं सिहर उठती हूँ !..."

विकल आश्चर्य से उस नारी की ओर देख रहा था, जिसे संसार वेश्या कहता था। संध्या की आँखों से आँसू बह रहे थे, और विकल सोच रहा था, क्या कह कर वह इस आत्मपीड़िता स्त्री को संतोष दे, धैर्य बंधाये। तभी संध्या ने साड़ी के आंचल से आंखें सुखा लीं, परन्तु वे फिर भीग गईं।

"और उनका शाप कितना सच निकला," उसने अपने को संयत करके फिर कहना आरम्भ किया : "मेरा विवाह वास्तव में एक करोड़-पति के साथ हुआ, परन्तु मुझे तो छल का प्रतिकार मिलना था। परिस्थितियों के जाल में पड़ कर आख़िर मुझे इस नर्क की यातना सहने आना ही पड़ा और उसे सह रही हूँ, रोकर, मरकर, जीकर।... उस घटना के कई साल बाद, जब मैं यहाँ आ गई, वे एक बार यहाँ आये थे, और व्यंग से मुझसे बोले थे, 'शमा बाई, मैं रुपये लेकर आया हूँ। तुम्हारे शरीर के साथ खिलवाड़ करूंगा।' उफ़, कैसी बेरहमी से पेश आये थे वे, बाबू साहब, बिल्कुल वहशियों की तरह, दरिन्दों की तरह। मैंने

कितना अपने को छुड़ाना चाहा, कितना उनकी गिरफ्त से निकल भागना चाहा, परन्तु सफल न हो सकी। सौ रुपये का एक नोट मेरे सामने फेंककर वे चले गये, उसी तरह भयानक हँसी हँसते हुए।... और तब मैंने अखबार में उनकी मौत का समाचार पढ़ा। पढ़ कर आठ-आठ आँसू रो पड़ी। मेरे ही कारण उनकी मृत्यु इतनी शोचनीय परिस्थिति में हुई। न मैं खुद सुखी हो सकी, न उन्हें ही संसार में कुछ करने दिया। वे बहुत महान् थे, यदि मैंने उनका हृदय तोड़ न दिया होता तो वे बहुत कुछ करके मरते। उफ़, मैंने ऐसी विभूति की निर्मम हत्या कर दी! मैंने...मैंने!"

वह फिर रो पड़ी। विकल को लगा, शरीर का व्यापार करने वाली यह औरत सचमुच कितनी पीड़िता है, कितनी आत्मप्रताड़ित! उसे राजीव के शब्द याद आये, 'वहाँ मजबूरी का व्यापार होता है, और वासना का भी। वहाँ बेबसी पलती है, और उच्छृंखलता भी। वहाँ प्राण जलते हैं, और चिराग़ भी। वहां शरीर लुटाये जाते हैं, और नोट भी।... वहाँ स्नेह, सुख, सन्तोष नहीं पलते, वहाँ इनका कोई मूल्य नहीं।...' उसने सिसकती संध्या को देखा। वह कितनी मजबूर है, कितनी बेबस, वह शरीर लुटाती है, उसके प्राण जलते हैं! उसके हृदय में उसके लिये सहानुभूति उभर आई। कोमल, मरहम-सा लगाने वाले स्वर में बोला: "आप रो-रो कर क्यों अपने जी को छोटा करती हैं? इस तरह न तो आपको ही शान्ति मिल सकती है, और न आप अपने राजीव को ही लौटा ला सकती हैं। आपको अपने पर अधिकार करना ही होगा।"

पिघल रही आंखें उठा कर संध्या ने विकल को देखा। आँसुओं के कारण बोझिल हो उठे स्वर में कहा: "यही तो कोशिश रहती है मेरी हर समय, बाबू साहब..."

"मेरा नाम विकल है।"

आज तक संध्या को न किसी ने अपना नाम बताया था, और न ही

उसे कभी पूछने की आवश्यकता पड़ी थी। उसने विकल की ओर देखते हुए ही कहा : "पर कभी-कभी दिल ही तो है, कसक उठता है, और मेरे सब्र का बांध टूट पड़ता है, विकल बाबू।"

विकल ने कहा : "और राजीव आनन्द को अभी भी आप प्रेम करती हैं ?"

"कब मैं उन्हें प्रेम नहीं करती थी," संध्या ने उत्तर दिया : "और कब वे मुझे नहीं चाहते थे ? मरते दम तक वे मुझ से ही प्रेम करते रहे। मरने के पहले अपनी एकमात्र संपत्ति—अपना बेला वे मेरे नाम ही कर गये थे। वह अब भी मेरे पास है। कभी उनकी याद आती है, तो उसे हृदय से लगा लेती हूँ और अकेले बैठकर रो लिया करती हूँ। मैं कभी अपने को क्षमा नहीं कर सकती, और ईश्वर से हर समय यही प्रार्थना किया करती हूँ, कि वह भी मुझे कभी क्षमा न करे।"

उसकी आँखें फिर छलक उठीं।

संध्या और राजीव आनन्द की दुखद कहानी में ही विकल इतना खो गया था कि उसे याद ही न रह गया था कि वह संध्या के यहां किसी विशेष काम से आया है। संध्या के मुख से 'बेला' सुनकर सहसा उसे याद आया, कि वह बेला लेने ही तो यहाँ आया है। परन्तु अब उसे माँगने या उसके विषय में कुछ कहने का साहस वह न कर सका। कुछ देर यों ही मूक बैठा रहा और संध्या की सिसकियों के थमने की प्रतीक्षा करता रहा। वह चुप हुई, तो उसने कहा : "मैंने आपका समय बेकार बरबाद किया, और आपकी दुखती रग को भी छू दिया। मुझे आशा है आप मुझे अवश्य क्षमा करेंगी।"

वह खड़ा हो गया।

रोने से लाल पड़ गई आँखों से उसे देखते हुए संध्या ने कहा :

"आप मुझसे कुछ लेने आए थे ?"

"जी हां, पर अब उसके विषय में एक शब्द कहने का भी दुस्साहस मैं नहीं कर सकता ।"

"क्यों ?"

"ऐसी पवित्र वस्तु को हाथ लगाकर मैं अपवित्र नहीं करूंगा ।"

संध्या के अधरों पर एक करुण मुस्कान आई : "पर बेला का पता आपको राजीव ने बताया है । स्पष्टतः वे चाहते हैं कि मैं बेला आपको दे दूं ।"

"हां, मेरे राजीव ने ही बेला का पता मुझे दिया था ।"

"आपके और मेरे राजीव में कोई अन्तर नहीं ।"

"है, बहुत अन्तर है," विकल ने उत्तर दिया : "आपके राजीव स्मृति भर बन कर कसकते हैं, पर मेरा राजीव सजीव वास्तविकता है ।"

संध्या मुस्कराई : "शायद ऐसा ही हो ! पर मैं उनकी बात से इनकार नहीं कर सकती । बेला आप ले जा सकते हैं ।"

"नहीं ?"

"हां, जब तक वे जीवित रहे, तब तक तो मैंने उन्हें कष्ट दिया ही है, अब उनकी आत्मा को और अधिक सताना नहीं चाहती । आज से बेला पर मेरा कोई अधिकार नहीं ।"

उठी और आलमारी से 'केस' निकालकर उसके सामने रख दिया । विकल ने लालायित दृष्टि से उसे देखा । मन हुआ, उसे छूकर, बजाकर देखे, पर संकोचवश वैसा कर न सका ।

"आप इसे उठाते क्यों नहीं ?" संध्या ने उससे कहा : "यह अब आपकी सम्पत्ति है ।"

विकल फिर भी उसे न छू सका ।

अन्ततः संध्या ने ही केस खोलकर बेला निकालते हुए कहा : "आपको कौन सा राग विशेष प्रिय है ?" एक बार और विकल इसी

प्रश्न का उत्तर दे चुका था, परन्तु शायद संध्या की स्मृति से वह बिल्कुल उतर गया ।

"जयजयवन्ती !"

"जयजयवन्ती !" संध्या का स्वर विकल को अधिक दूर से तिरकर आता हुआ मालूम पड़ा : "वे भी बेसुध होकर यही राग मेरे सामने बजाया करते थे ।"

विकल उसे देखता रहा ।

"बेला आप ले जाइये !" संध्या ने कहा : "एक प्रार्थना करूंगी । कभी-कभी मुझे इसके स्वर से तृप्त कर दिया कीजियेगा, बस !"

विकल ने बेला हाथ में उठा लिया, और गज फेरा तो बहुत मधुर, बहुत ही मधुर स्वर निकलकर वातावरण में घुल गया, उसके अपने बेला के स्वर से हज़ार गुना मधुर ! सहसा उसके हाथ और अंगुलियाँ मचल उठे, और संध्या 'जयजयवन्ती' में डूब गई ।

न मालूम कितनी देर बाद उसकी समाधि टूटी, तो राग थम चुका था और विकल बेला 'केस' में रख रहा था ।

"आप बहुत अच्छा बजाते हैं, विकल बाबू !" संध्या ने उच्छ्वसित स्वर में कहा : "बिल्कुल उन्हीं जैसा । इसी तरह उनका बेला सुनती-सुनती मैं विसुध हो जाया करती थी । कभी-कभी आप यह राग मेरे लिये बजा दिया करेंगे न ?"

"जब आप कहेंगी ।" विकल ने उत्तर दिया ।

वह उठ खड़ा हुआ । जेब से सौ-सौ के दो नोट निकालकर संध्या की ओर बढ़ाये । वह एकदम अप्रतिभ हो एक पग पीछे हट गई । उसने कहा : "यह क्या-बेला का मूल्य ?" उसकी आंखों में दुःख भरा क्रोध था ।

"नहीं," विकल ने शान्त स्वर में कहा : "आपके समय का मूल्य ।"

समय का मूल्य ! संध्या ने विकल की ओर देखा । आज तक तो

उसे अपने रूप का मूल्य मिला था, अपने शरीर का मूल्य मिला था, किसी ने उसे समय का मूल्य नहीं दिया था। उसने कहा : "इसकी ज़रूरत नहीं।" उसकी आँखों में छलक आया क्रोध तिरोहित हो गया।

"आपको न होगी," विकल ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया : "पर आप पर निर्भर और लोगों को है।"

नोट उसके हाथ में पकड़ा, वेला का 'केस' लेकर वह तेज़ी से नीचे उतर गया।

उसी क्षण घंटाघर की घड़ी ने चार का घंटा बजाया।
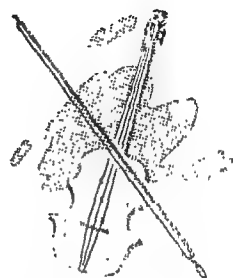
साढ़े चार बजे विकल घर पहुँचा। उस रात का अनुभव उसके लिये सर्वथा नवीन था। बदनाम मुहल्ला। अंधेरी गली। संध्या अथवा शमा। मृत राजीव आनन्द। जीवित राजीव। सुमधुर-स्वर-विभूषित बेला। उसने मेज़ पर रक्खे बेला को प्यार से देखा।

रात भर वह जगा था, फिर भी थकान ज़रा भी न अनुभव हो रही थी। उसका मन हो रहा था कि फ़ौरन ही बैठ कर स्वर साधना करने लगे। कितना मधुर स्वर है इस बेला का, कितना हृदयग्राही!

संध्या। कितनी पीड़ित है वह स्त्री भी! राजीव आनन्द को उसे क्षमा कर देना चाहिये था? यह ठीक था कि राजीव उससे प्रेम करता था और संध्या ने उसके प्रेम को ठुकराया था, परन्तु प्रेम का आदर्श सदा मिलन ही तो नहीं होता! कभी कभी त्याग भी तो करना पड़ता है! राजीव को इतना निर्दय नहीं बनना चाहिये। ग़लती आख़िर मानव से ही होती है, और क्षमा भी मानव ही करता है! नहीं, राजीव को विवेक से काम लेना चाहिये था।

संध्या ने कहा था—आपके राजीव और मेरे राजीव में अन्तर नहीं।

पर यह कैसे हो सकता है ? उसका राजीव सर्वथा जीवित है और संध्या का राजीव आठ सितम्बर को राजयक्ष्मा से मर चुका है ? पर संध्या को विश्वास है, कि उसके राजीव और मेरे राजीव में अन्तर नहीं, नहीं तो केवल नाम सुनकर ही बेला विकल को दे न देती !...तो क्या...

प्यार से उसने राजीव आनन्द के—अब अपने—बेला पर हाथ फेरा। लगा, एक बार बजा ले। फिर यह सोचकर रुक गया, कि किसी को नहीं मालूम होना चाहिये उसके पास एक दूसरा और बहुत अच्छा बेला हो गया है। आलमारी में यन्त्र को रखकर उसने ताला लगा दिया। चैन की एक सांस ली, एक गिलास पानी पिया, और अंगड़ाई लेकर लेट गया। सहसा याद आया कि रात भर वह एक पलक भी नहीं सोया। थोड़ा बहुत सो लेना तो ज़रूरी ही है, उसने सोचा, और आंख बन्द कर ली।...

"भैया कितना सोओगे ?" बेचू काका ने झकझोर कर उसे जगाते हुए कहा : "उठो ! सूरज कितना ऊपर उठ आया है।"

हड़बड़ा कर विकल उठ बैठा। उनींदी आंखों से काका को देखते अंगड़ाई लेते हुए उसने पूछा : "कै बज गये, काका ?"

"नौ।"

"नौ ? बाप रे !" उछल कर विकल धरती पर खड़ा हो गया।

"हाथ-मुंह धो आओ, भैया, कॉफ़ी तैयार है।"

"अच्छा काका !"

नाश्ता करके वह पढ़ने बैठा। किताब खोल कर सामने रखी। नोट्स लेने के लिये फ़ाइल खोल ली। एक पृष्ठ पूरा पढ़ चुका, तो याद ही न रहा क्या पढ़ा था। फिर पढ़ा और फिर भूल गया। एक बार और कोशिश की, लेकिन कोई लाभ नहीं। आखिर कोशिश बन्द कर दी। किताब खुली रही, पर मस्तिष्क बेला के तार टुनकाने लगा।

कितना अच्छा बेला है यह ! स्वर कितना मधुर और कितना कोमल

है ! उसका अपना बेला तो इसकी तुलना में कहीं नहीं ठहरता !...

बेला के ध्यान में ही वह इतना डूब गया कि उसने ताला खोल कर कब उसे बाहर निकाल लिया, उसे पता न लगा। पर एक बार जब उसे बाहर निकाल ही लिया तो फिर बजाये बिना कैसे रख देता ? दरवाज़ा और खिड़की दोनों बन्द कर लिये और रोशनी जलाकर पंखा चला दिया। पहली बार वह छिप कर बजाने जा रहा था, क्योंकि इसकी ज़रूरत थी। उसने अभी तक अपनी और राजीव की मित्रता के बारे में किसी को नहीं बताया था, फिर राजीव की सहायता से मिले हुए बेला के विषय में वह किसी को कैसे बताता ?

मुश्किल से दस मिनट बजाते बीते थे, कि दरवाज़े पर हाथ की थाप पड़ी, और अमल ने पुकारा : "विकल !"

अमल का उस समय आ पहुँचना उसे ज़रा भी अच्छा न लगा। कुछ कुछ क्रोध भी आया। बेला जल्दी से आलमारी में बन्द कर ताला लगाया और अपने को ज्यादा से ज्यादा ठीक रखते हुए दरवाज़ा खोल दिया।

"अभी किसकी आवाज़ आ रही थी ?" अन्दर घुसते हुए अमल ने चारों ओर देखकर पूछा।

"मैं बेला बजा रहा था," विकल ने सीधे, सरल ढंग से उत्तर दिया।

"वह तुम्हारे बेला का स्वर था ?" अमल ने अविश्वास से पूछा।

"हां।"

"वह तुम्हारे ही बेला का स्वर था ?"

"और कोई बेला यहां कहां से आ जायगा !"

"आश्चर्य है ! ऐसा स्वर तो उससे कभी नहीं निकलता था। क्या तुम जादू सीख गये हो, विकल ?"

विकल मुस्कराया : "नहीं, रियाज़ किया है। चाहो तो उसे ही जादू कह लो।"

अविश्वास का कोई कारण न था। अमल ने कहा : "बधाई !"

"धन्यवाद !" विकल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया : "पर इस समय कैसे आये ?"

"एक ज़रूरी काम से। 'मिल्टन' चाहिये लेने को।"

"वहां आलमारी में रक्खी है।" विकल ने आलमारी की ओर इशारा किया।

अमल ने किताब निकाल ली। जाने को मुड़ा तो भद्रतावश विकल ने कहा : "कुछ देर तो बैठो।"

असल में वह बिल्कुल अकेला रहना चाहता था; नहीं चाहता था कि कोई उसके एकान्त में विघ्न डाले। अकेले बैठकर वह बेला, संध्या और राजीव के विषय में सोचना चाहता था। और इसी कारण जब अमल 'पर दस मिनट ही रुकूंगा' कह कर बैठ गया, तो उसे अच्छा न लगा।

द्वैत

दिन भर आकाश से आग बरसी और पश्चिम से लू वेगवती हो उठी और धरती का शरीर झुलस कर कुम्हला गया। शाम हुई तो आग की बरसात थम गई, लू मन्द पड़ गई और पीड़ित धरती ने मुक्ति की सांस ली। रात्रि ने पांव धरे तो आग के स्थान पर चाँदनी झरने लगी, और लू की जगह ठंडी हवा झूम उठी, और धरती का कुम्हलाया हुआ शरीर कुछ खिल उठा।

बंगले के सामने छोटे से सुन्दर बगीचे में आराम कुर्सी रखता हुआ विकल गुनगुनाया: "जो तुम आ जाते एक बार!"

आराम कुर्सी पर जा बैठ वह चांद की ओर देखने लगा। पीला-पीला-सा चांद, थका-सा, हारा-सा, अकेला।

अभी वह युवक है, उसने सोचा, अभी उसकी रगों में गर्म, ताजा लहू है, जो उसे नया जीवन, नई शक्ति, नई स्फूर्ति, और नया उत्साह प्रदान करता है, जो उसे अपने लक्ष्य के समीप पहुँचने में सहायता करता है, लेकिन एक दिन ऐसा आयेगा, जब उसकी धमनियों में उबाल खाने वाला यह लहू ठंडा होकर शान्त हो जायगा और अपने

लक्ष्य के प्रति वह भी उदासीन हो जायगा, और तब वह भी पीले चांद की तरह पीला पड़ जायगा, थक जायगा, हार जायगा।

वह अपने आप मुस्कराया। हां, ठीक ही तो है, कौन है उस चांद का साथी? अकेला है वह, नितान्त अकेला। उसका तो एक साथी है, जो उसे लक्ष्य तक पहुँचने में सहायता कर रहा है। राजीव के आभार से वह कभी मुक्त नहीं हो सकता।

परन्तु क्या राजीव जीवित व्यक्ति नहीं? कितनी दृढ़ थी संध्या, जब उसने कहा था, 'आपके राजीव और मेरे राजीव में कोई अन्तर नहीं।' तो आज राजीव केवल प्रेतात्मा है? प्रेतात्मा...!...

सिर उठाया, तो अपने सामने राजीव को खड़ा देखा। एक क्षण पहले की उसकी विचारधारा सूख गई। आन्तरिक आह्लाद, जो सदैव उसे राजीव से मिलने पर अनुभव होता था, आनन पर खिल उठा।

"आओ," उसने कहा : "अभी तुम्हारी ही याद कर रहा था। तुम्हारी उम्र बड़ी लम्बी है।"

राजीव मुस्कराया।

"बैठो इस पर," विकल ने कुर्सी की ओर संकेत किया : "मैं एक और लिये आता हूँ।"

राजीव बैठ गया। दूसरी कुर्सी लाकर उस पर बैठता हुआ विकल बोला : "बड़े धोखेबाज़ हो तुम। कल कहां गायब हो गये थे?"

मुस्कराते हुये राजीव ने उत्तर दिया : "बस कुछ न पूछो, बाल-बाल बचा। जैसे ही हम लोग संध्या वाली गली में मुड़े, पिता जी के एक मित्र दिखलाई पड़ गये और मैंने भाग निकलने में ही अपनी कुशल समझी।"

विकल हंसा : "बड़े कायर हो।"

"इसमें क्या शक?" हंसते हुये राजीव ने उत्तर दिया : "नहीं तो भागता ही क्यों?"

दोनों हंसे।

"जानते हो, संध्या तुम्हारे लिये क्या कह रही थी?"

"क्या?"

"कह रही थी कि हर एक आदमी वहां जाने की हिम्मत नहीं कर सकता और कल मैं तुम्हें अपने घर में पलंग पर करवटें बदलता देख सकता था। सच राजीव, यदि मुझे तुम्हारा घर मालूम होता, तो मैं ज़रूर तुम्हें देखने पहुँचता।"

राजीव हंसा। तनिक देर बाद बोला: "तो वह मिल गई थी?"

"हां," विकल ने उत्तर दिया: "उसकी जैसी पीड़िता स्त्री मैंने नहीं देखी।"

राजीव ने जैसे विकल का अन्तिम वाक्य सुना ही नहीं, बोला: "बेला मिल गया?"

"हां। उसने तुम्हारा नाम सुनकर ही बेला दे दिया। तुम उसे जानते हो क्या?"

"कहां है बेला? दिखाओ मुझे।"

"अभी दिखाता हूँ," विकल ने उत्तर दिया: "पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो।"

राजीव ने उसकी ओर देखा।

विकल ने पूछा: "तुम संध्या को जानते हो?"

"नहीं।"

"फिर वह तुम्हें कैसे जानती है?"

राजीव हंसा: "उसी से पूछो।"

तनिक रुक कर विकल ने फिर कहा: "तुमने अभी तक मुझे यह क्यों नहीं बताया कि तुम भी बेला बजाते हो?"

राजीव ज़ोर से हंस पड़ा: "यह भी उसी ने कहा है?"

विकल ने सिर हिलाया: "हां।"

"उसने तुम्हें कोई कहानी भी सुनाई होगी।"

विकल ने आश्चर्य से अपने मित्र की ओर देखा : "तुम्हें कैसे मालूम ?"

राजीव हंसा : "सारी बातें एक साथ ही जान लेने की कोशिश मत करो। हां, तो उसने कौन-सी कहानी सुनाई थी ?"

विकल ने गम्भीरतापूर्वक राजीव आनन्द और संध्या की प्रेम कहानी कह सुनाई। जब तक कहानी समाप्त नहीं हो गई, राजीव गम्भीर बैठा रहा, परन्तु उसके खत्म होते ही खिलखिला कर हंस पड़ा, बोला : "तो तुम मुझे क्या समझते हो—प्रेत या आदमी ?"

विकल सहसा इस प्रश्न का कोई उत्तर न दे सका, वह ऐसे प्रश्न के लिये तैयार ही न था। बोला : "मैं तुम्हें कभी प्रेत नहीं समझ सका। कैसे समझ लेता ?"

"फिर भी उसकी कहानी पर विश्वास करते हो ?"

"न विश्वास करने का कोई कारण भी तो समझ में नहीं आता," विकल ने उत्तर दिया : "उसकी कहानी बड़ी करुण है और झूठ नहीं मालूम होती, फिर कैसे अविश्वास कर लेता ?"

"पर कहानी उसने बड़ी अच्छी सुनाई।" राजीव बोला : "उसके कारुण्य ने, मुझे लगता है, तुम्हारे ऊपर गहरा प्रभाव डाला है। सचमुच उसकी कल्पना शक्ति की प्रशंसा करनी ही पड़ती है।"

वह सहसा गम्भीर हो गया, और तनिक भारी स्वर में बोला : "विकल, तुम अभी बहुत भोले हो। एक औरत ने—वह भी वेश्या—जरा अभिनय करके एक गढ़ी हुई कहानी सुना दी, दो आंसू बहा दिये, सिसकियां लेने लगी, और तुम विचलित हो उठे, पिघल गये। तुमने अभी औरतें देखी ही कहां हैं ? देखी होतीं तो कभी भी इतने शीघ्र पिघल न पड़ते। दीदी तुम्हारे लिये सदा अक्षय प्रेम और वात्सल्य का भंडार ही रही हैं। और तुम्हारी पत्नी ! — अभी तो तुम दोनों कल्पना के

संसार में ही विचरण कर रहे हो। इसीलिये संध्या को न समझ पाने में तुम्हारा अधिक दोष नहीं, फिर भी इतनी जल्दी वह नहीं जाना चाहिये था तुम्हें।"

विकल अवाक् राजीव की ओर देखता रहा। राजीव उसे एक अनबूझ पहेली सा जान पड़ा। अभी कल ही तो उसने कहा था, 'वहां मजबूरी का व्यापार होता है, और वासना का भी। वहां बेबसी पलती है, और उच्छृंखलता भी। वहां प्राण जलते हैं, और चिराग़ भी। वहां शरीर लुटाये जाते हैं और नोट भी। वहां पहुँच कर मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता, पशु या दानव हो जाता है। वहां स्नेह, सुख, सन्तोष नहीं पलते, वहां उनका कोई मूल्य नहीं। वहां तो दानवता अट्टहास करती है, और उस अट्टहास से कमरों के चिराग़ बुझ जाते हैं।' रूपहाट नामक नर्क का उसने कितने सीधे, परन्तु कितने उचित शब्दों में वर्णन कर दिया था। उसके इस कथन में उन स्त्रियों—जो अपनी मजबूरी और बेवसी के कारण तन बेचती थीं—के प्रति कितनी करुणा, कितना स्नेह, कितनी सहानुभूति थे, और अब एक दुःखी संतप्ता स्त्री की कथा सुन कर वह वह कहता है, 'एक औरत ने—वह भी वेश्या—ज़रा अभिनय करके एक गढ़ी कहानी सुना दी, दो आंसू बहा दिये, सिसकियां लेने लगी और तुम विचलित हो उठे, पिघल गये।' कहां चला गये उसकी कल की करुणा, स्नेह, सहानुभूति?

वह अवाक् राजीव की ओर देखता रहा।

"तुम कहोगे नारी मां है, अन्नपूर्णा है, जीवनदायिनी शक्ति है, और भी न जाने क्या क्या!" राजीव ने ही फिर कहा: "तुम इसके अतिरिक्त कुछ कह ही नहीं सकते, क्योंकि तुम उसे जानते तो हो नहीं, इधर उधर पढ़ा है। मुझसे पूछो, तो मैं कहूँगा, नारी छलना है, प्रवंचना है, और है पुरुष की सम्पूर्ण शक्ति हरण कर लेने वाली दानवी।..."

राजीव का अन्तिम शब्द सुनकर विकल सिहर उठा। क्या ऐसा

भयावह शब्द भी स्त्री जैसे कोमल प्राणी के लिये प्रयुक्त हो सकता है ?

राजीव कहता गया : "चौंको मत तेरी बात सुनकर। इससे अच्छी परिभाषा मैं नहीं दे सकता, कोई नहीं दे सकता। और मेरी यह धारणा केवल कुछ किताबों में पढ़कर या सुनकर नहीं बनी है, अनुभव के आधार पर ही मैं ऐसा कह रहा हूँ। यह जाति वास्तविक जीवन में जितना नाटक कर सकती है, उतना शायद कोई नहीं कर सकता। और उसका यह अभिनय पुरुष सच समझते हैं। फिर जब हम बिलकुल असावधान होते हैं, तो एक ऐसी गहरी ठोकर लगाती हैं कि... इसीलिए कहता हूँ विकल, कि नारी प्रवंचना है, इससे दूर रहो, और इसके अभिनय को कभी वास्तविकता मत समझो।"

"राजीव !" विकल की उत्तेजना छिप न सकी : "तुम यह क्या कह रहे हो ?"

राजीव हंसा : "उत्तेजित होने की ज़रूरत नहीं। ज़रा गम्भीरतापूर्वक विचार करो, और तब कुछ कहो। मानता हूँ एक युग से जिन विचारों को तुम अपने मस्तिष्क में प्रश्रय देते आये हो, उनके ढह जाने की आशंका से तुम्हारा उत्तेजित हो उठना स्वाभाविक ही है, लेकिन फिर भी व्यक्ति में अपना व्यक्तित्व तो होना ही चाहिये। तुम इस समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर ही कैसे सकते हो, जब तुम उसे जानते ही नहीं। खैर, कोई बात नहीं। अभी तो तुम्हारी ज़िन्दगी की शुरुआत ही है। चार-छः या दस-पन्द्रह साल बाद कभी फिर इस विषय पर बातचीत करेंगे। तब तक तुम्हें भी कुछ अनुभव हो चुकेगा, संसार की कठोरता और भयानकता से भी तुम भी परिचित हो जाओगे।"

मौन विकल राजीव की ओर देखता रहा।

"बताओ, और क्या कहती थी वह ?" राजीव ने हंस कर पूछा।

विकल के मस्तिष्क में राजीव के विप्लवकारी विचार घूम रहे थे। वह सहसा कोई उत्तर न दे सका।...नारी छलना है, प्रवंचना है, और है

पुरुष की सम्पूर्ण शक्ति हरण कर लेने वाली दानवी।...इन्हीं विचारों में खोया हुआ वह कह पड़ा : "नारी क्या सचमुच केवल छलना, प्रवंचना ही है, राजीव ?"

"अब छोड़ो इस बात को," राजीव ने मुस्कराते हुए कहा : "इस पर कुछ वर्षों बाद ही बातचीत हो सकेगी।"

"विश्वास नहीं होता, राजीव, कि नारी केवल छलना है," विकल के मस्तिष्क को अब भी राजीव की बात कुरेद रही थी : "आख़िर सीता सावित्री, दमयन्ती भी तो नारियां थीं—क्या उन्हें तुम छलना कह सकते हो ?"

"मनुष्य सदा अपने से ऊँची वस्तु पाने की कल्पना किया करता है," राजीव ने गंभीर स्वर में कहा : "और यह ध्रुव सत्य है कि वह अपने इस प्रयास में कभी सफल नहीं होता। साथ ही अपने स्वभाव के वशीभूत हो कर वह ऐसी वस्तु की, ऐसे व्यक्ति की, ऐसे चरित्र की कल्पना भी करता है, जो हर प्रकार से आदर्श हों; सीता, सावित्री, दमयन्ती के चरित्र भी उसी आदर्श की कल्पना हैं।"

विकल राजीव के इस तर्क का उत्तर न दे सका। वह ख़ुद भी तो उसी आदर्श की कल्पना किया करता है, वह ख़ुद भी तो उसी पूर्णत्व को प्राप्त करने की चेष्टा किया करता था। तो क्या उसकी पूर्णत्व प्राप्त करने की आशा दुराशा मात्र है ? वह व्यथित हो मौन हो गया।

"विकल, तुम चुप क्यों हो गये ?" राजीव ने उसके चेहरे का रंग बदलते देखकर पूछा।

"अभी-अभी तुमने कहा कि मनुष्य आदर्श की कल्पना मात्र कर सकता है, उसे पा नहीं सकता," विकल ने कहा : "क्या मैं बेला पर पूरा अधिकार प्राप्त नहीं कर सकूँगा ?"

राजीव मुस्कराया, कुर्सी पर ज़रा आगे झुककर उसने विकल का कंधा थपथपाया। तब कहा : "इसमें संदेह नहीं कि तुम बहुत बड़े पागल हो।

तुम्हें खुद पर, अपनी कोशिश पर अविश्वास क्यों ?"

विकल और राजीव की आंखें मिलीं। विकल को कुछ बल मिला। वह सम्हला।

"तो उसने बेला तुम्हें दे ही दिया ?" राजीव ने फिर पूछा, जैसे अब तक उसे यह मालूम ही न रहा हो।

"हां!"

"और उसके बदले में तुम्हें क्या देना पड़ा ?"

"एक वादा।"

"वादा ?"

"हाँ, यह कि जब कभी वह चाहेगी, मैं उसे बेला सुना दिया करूँगा।"

"और तुमने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया ? वादा कर लिया ?"

"हां।"

"यह तुमने अच्छा नहीं किया, विकल, यह तुमने बिल्कुल ग़लत किया। तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये था।"

"क्यों ?"

राजीव ने आंखें विकल के मुख पर गड़ा दीं, कहा: "वह औरत है।"

'खट्' से विकल के मस्तिष्क में बज उठा, 'नारी छलना है, प्रवंचना है, और है पुरुष की सम्पूर्ण शक्ति हरण कर लेने वाली दानवी!' व्याकुल हो उठा। तनिक देर बाद बोला: "तुम नारी को इतना हेय क्यों समझते हो ?"

"समझता हूँ ?" राजीव ने जैसे बड़े आश्चर्य से उत्तर दिया: "नहीं, विकल, मैं समझता नहीं हूँ, वह है ही हेय। मंथरा और कैकेयी मेरी बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। कुन्ती ने अपने जाये पुत्र कर्ण को लोक-लाज के भय से

त्याग दिया। डेलायला ने सैम्सन से प्रेम करने का नाटक किया और उसकी अपरिमित शक्ति का रहस्य जानकर उसके वास्तविक प्रेम को ठोकर मार दी, जिसके कारण सैम्सन की अन्धे होकर अत्यन्त करुण मृत्यु हुई।* मिस्र की रानी क्लियोपैट्रा ने एक के पश्चात् एक कई के साथ प्रेमाभिनय किया, परन्तु प्यार किसी को नहीं किया—उसके छल को सत्य समझ कर जूलियस सीज़र और मार्क एन्टनी जैसे योद्धा भी शक्तिहीन हो गये।† ...फिर मेरा अपना अनुभव। तुम्हीं बताओ, औरत को मैं क्या समझूँ, कोई क्या समझे—मां, अन्नपूर्णा, देवी?... या ...?"

"परन्तु, राजीव, क्या यह सम्भव नहीं कि मंथरा, क्लियोपैट्रा, डेलायला आदि नारी के विकृत रूप की कल्पना मात्र हों?"

राजीव हंसा: "तुम भी कैसे पागल हो, विकल! मानव सदा ऊँचे उठने की कामना करता है, नीचे गिरने की नहीं। फलस्वरूप वह किसी वस्तु के परिष्कृत रूप की कल्पना करता है, विकृत रूप की नहीं। यह दूसरी बात है, कि वह प्रतिक्षण विकृतावस्था की ओर ही बढ़ता जाता हो। फिर तुम कैसे कह सकते हो कि ये चरित्र कल्पना मात्र हैं?"

कई क्षणों तक सोचने पर भी विकल की समझ में कोई उत्तर न आया। आखिर उसने कहा: "मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा, राजीव!"

राजीव हंसा: "मैंने तो पहले ही कहा था, कि अभी तुम अनुभव-हीन हो, इस विषय पर बात नहीं कर सकते। तुम्हीं हो, जो नहीं मानते। ख़ैर, छोड़ो इसे। बताओ, और क्या कहती थी वह?"

"कहती क्या थी, बहुत दुखी थी, हर मिनट आंखें भर आती थीं!"

राजीव मुस्कराया।

---

* बाइबिल की एक कथा।

† देखिये शेक्सपियर कृत 'Antony and Cleopatra' और शा कृत 'Caesar and Cleopatra' और एमिल लुडविग कृत 'Cleopatra'.

"और कुछ ? कितने रुपये देने पड़े ?"

"देने नहीं पड़े, राजीव, मैं दे आया, मैं खुद दे आया।"

"कितने ?"

"दो सौ।"

"इतने क्यों दिये ? पचास-साठ में ही कम चल जाता ?"

"क्या मतलब ?" विकल ने पूछा। उसका स्वर तनिक कठोर हो गया था।

राजीव मुस्कराया : "तुम मेरा मतलब नहीं समझते ?"

राजीव की मुस्कान से विकल तिलमिला उठा, तेज़ी से बोला : "मैं बेला लेने गया था, राजीव ..."

राजीव फिर भी मुस्कराता रहा : "फिर दो सौ रुपये क्यों दे आये ? बेला की क़ीमत ?"

"नहीं, उस बेला का मूल्य इतना कम नहीं है। उसमें किसी का प्यार, किसी की निर्ममता, किसी की मृत्यु, किसी के आँसू निहित हैं। क्या इनका मूल्य दो सौ रुपये ही होता है ?"

राजीव हंसा : "फिर वही भावुकता ? बेला की कीमत नहीं दी तो रुपये क्यों दिये ?"

"उसके समय की कीमत।"

"समय की कीमत ?" राजीव ठहाका लगाकर हंस पड़ा : "औरत के समय की कीमत ? वेश्या के समय की कीमत ? पूछो उससे, उसने भी कभी पुरुष के समय की कीमत चुकानी जाना है ?... समय की कीमत ? तुम बड़े भावुक हो, विकल। मुझे लगता है कि उसकी गढ़ी हुई कहानी ने तुम पर इतना प्रभाव डाला कि तुम उचित-अनुचित का विचार भी खो बैठे।"

अप्रतिभ होकर विकल राजीव की ओर देखता रहा। उसका मुख आभाहीन हो गया। कोई उत्तर न दे सका। कभी उसने सोचा था, उसकी

प्रेरणा ही राजीव का रूप धर कर उसके सामने आती है, उसे प्रेरित करती है और चली जाती है। धीरे-धीरे उसे राजीव के अस्तित्व पर विश्वास होने लगा। फिर संध्या ने उलझन और बढ़ा दी। और अब राजीव का यह नया रूप!

उसकी समझ में न आ रहा था कि राजीव को वह क्या समझे? अजीब पहेली सा बनकर वह उसके सामने खड़ा हो गया है।

उसे मौन देखकर राजीव ने कहा : "चुप क्यों हो गये, विकल?"

"सोच रहा हूँ, तुम क्या हो?" विकल ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया : "जितना ही तुम्हें समझने की कोशिश करता हूँ, तुम उतने ही दुर्बोध होते जाते हो।"

राजीव हंसा : "मानव-चरित्र इतना बोधगम्य होता ही कब है?"

विकल उठकर खड़ा हो गया। बेचैनी से टहलता हुआ, उलझनभरे स्वर में बोला : "क्या तुम मुझे पागल बना डालना चाहते हो, राजीव?"

"नहीं, विकल," राजीव ने उत्तर दिया : "मैं तुम्हें बतलाना चाहता हूँ कि यह दुनियाँ उतनी सरल, अकृत्रिम, सच्ची, उदार नहीं है, जितना तुम सोचते हो। ...चलो, बेला दिखाओ मुझे।"

"दीदी को पत्र डाल दिया आपने ?"

विकल ने शैल की ओर देखा। "नहीं, अभी तो नहीं, डाला।" उसने उत्तर दिया।

"कैसे आदमी हैं आप," शैल ने कहा : "एक हफ्ता हो गया हमें यहाँ आये और आपने उन्हें पहुँचने की सूचना तक नहीं दी ! दो ही लाइनें लिख दी होतीं।"

"भाई, पत्र तब डाला जाता है, जब कुछ ख़ास बात हो जाती है," विकल ने मुस्करा कर उत्तर दिया : "पत्र न पहुँचे, समझ लो सब ठीक हैं।"

"जी हां ! कहना बड़ा आसान है।" शैल ने कहा : "आपको क्या मालूम वे कितनी बेचैन होंगी ?"

"तुम्हें मालूम है।" विकल अब भी मुस्करा रहा था।

"जी हां।"

"और मुझे क्यों नहीं मालूम भला ?"

"आप समझ ही नहीं सकते, क्योंकि आप में वैसा हृदय नहीं है।

यह अनुभव करने के लिए आपको..."

"हां, हां, कह डालो।"

शैल हँसी : "अब क्या कहूँ, अक्लमंद को इशारा काफ़ी।"

"और जो अक्लमंद न हो...?"

"भगवान ही उसकी रक्षा करे!"

विकल उसका उत्तर सुनकर हँसा, तो वह भी हँस पड़ी।

कुछ देर बाद शैल बोली तो उसका स्वर गम्भीर हो गया था। उसने कहा : "एक बात कहूँ आपसे, बुरा तो नहीं मानेंगे?"

विकल मुस्कराया : "बुरा क्यों मानूंगा भला।"

"कानपुर में बेचू काका दीदी से एक बात कह रहे थे।" शैल का स्वर इतना धीमा और रहस्यमय-सा हो गया था, कि विकल को आश्चर्य हुआ, वह क्या कहना चाहती है : "वे कह रहे थे कि..."

"रुक क्यों गईं? क्या कह रहे थे?"

"देखिये, नाराज़ मत होइयेगा।"

"नहीं होऊंगा भई, तुम कहो तो।"

"कह रहे थे," शैल ने अपनी बात पूरी कर ही डाली : "कि इधर कुछ महीनों से आपका मन अपनी किताबों में नहीं लगता और आप उनकी ओर से बिल्कुल उदासीन हो गए हैं। हाँ, कभी-कभी आप पढ़ने लगते हैं, तो दिन रात का भी ध्यान नहीं रहता। बेचू काका बहुत दुःखी थे; कहते कहते उनकी आँखें भर आई थीं। मुझे अच्छा नहीं लगा था। क्या बेचू काका सच कहते थे?"

कुछ देर को विकल चुप रहा। उसे सहसा ही बेचू काका पर क्रोध हो आया, आखिर इस जासूसी और चुगलखोरी का क्या मतलब? वह पढ़ता है या नहीं पढ़ता, बेला बजाने में या किसी और कुसंगति में अपना समय नष्ट करता है, इससे उन्हें भला क्या सरोकार? उनका काम है घर

का इन्तज़ाम करना, उसके ऊपर रोब जमाना अथवा अभिभावकत्व की भावना प्रदर्शित करना नहीं ! उन्हें चुप रहना चाहिये, बिल्कुल चुप, वह जो कुछ करता है ठीक करता है, किसी को उसे समझाने अथवा राह दिखाने की आवश्यकता नहीं ! बेचू काका के प्रति खीझ में विकल यह भूल गया कि बेचू काका केवल उसके नौकर ही नहीं हैं, उससे कुछ और अधिक, कुछ और ऊपर हैं। उन्होंने पिता की मृत्यु के बाद अपने हृदय का सम्पूर्ण वात्सल्य उस पर ही उंडेल दिया है। उन्होंने उसके लिये जो कुछ किया है, वह एक साधारण नौकर कभी नहीं कर सकता।

जरा खीझे स्वर में बोला : "उन्हें कैसे मालूम ?"

शैल ने चकित होकर विकल की ओर देखा। बेचू काका के प्रति विकल ने सदैव आदर सम्मान का भाव ही दिखाया था। कभी वह उनसे या उनके विषय में अनादर अथवा अपेक्षापूर्वक नहीं बोला था। इसलिये स्वाभाविक ही था, यदि शैल को विकल का रुक्ष स्वर अप्राकृतिक मालूम हुआ।

विकल ने वैसे ही रुक्ष स्वर में कहा : "मैं आज ही बेचू काका को मना कर दूँगा कि मेरे बारे में वे किसी से कुछ न कहा करें। मैं जो करता हूँ, मुझे वे करने दें।"

थोड़ी देर तक उसे ध्यान से देखते रहने के बाद शैल ने कहा : "आपको क्या हो गया है आज ?"

विकल ने अपनी ही बात जारी रखते हुए कहा : "मुझे यह सब बिल्कुल पसन्द नहीं। मुझे क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

क्षणिक निस्तब्धता रही, गंभीर, भारी। तब शैल ने कहा : "तो बेचू काका ठीक कहते थे ! है न ?"

और विकल चीख पड़ा : "हां, बेचू काका ठीक कहते थे, बिल्कुल

ठीक कहते थे। मैं आजकल बिल्कुल नहीं पढ़ता। बिल्कुल नहीं पढ़ना चाहता। मैं अब डॉक्टरेट नहीं लेना चाहता। मैं नहीं पढ़ूंगा, कभी नहीं पढ़ूंगा..."

शैल स्तब्ध रह गई। थोड़ी देर में अपने को सम्हालकर धीमे कम्पित स्वर में बोली : "क्यों नहीं डॉक्टरेट लेना चाहते आप?"

"क्योंकि मुझे उसकी ज़रूरत नहीं।"

"कुछ महीनों पहले तक तो यह बात न थी।"

"तब मैंने स्वयं पहचाना न था।"

"अब पहचान लिया आपने?"

"हां, मैं साहित्य में सिर खपाये मर जाने के लिए धरती पर नहीं आया हूँ। मेरा जन्म किसी दूसरे काम के लिए हुआ है। मेरा लक्ष्य कुछ दूसरा है।"

शैल का मानस आशंका से कांप उठा। विकल को क्या हो गया है? उसने पूछा : "क्या है लक्ष्य आपका?"

विकल उठकर आलमारी तक गया और बेला का केस निकालकर उसके सामने रखता हुआ बोला : "बेला।"

यंत्र को गले से टिका, हाथ फेरते हुए, जैसे संगीत में डूबकर फिर कहा : "जयजयवन्ती!"

शैल आश्चर्यान्वित हो विकल की ओर देखती रह गई।

हाथ रोककर विकल बोला : "इस तरह मेरी ओर क्या देख रही हो? क्या मैं कोई पागल हूँ?"

व्यथित हो शैल बोली : "यह मैंने कब कहा?"

"फिर इस तरह मेरी तरफ़ क्यों देख रही हो?"

उसके दाहिने हाथ ने फिर बेला के तारों पर गज दौड़ाया। कांपता हुआ स्वर वातावरण में समा गया। गज दूसरी बार भी दौड़ने वाला था, कि शैल के डबडबाये नयन दीखे। हाथ रुक गया। स्वर थम गया।

"शैल!" उसका स्वर कोमल था, और पहले की रूक्षता ग़ायब हो

चुकी थी।

"तुम्हें मेरी बात सुनकर दुःख हुआ?"

बहुत कोशिश करके शैल ने उत्तर दिया : "आशा निराशा में बदलती है, तो दुःख होता ही है।"

विकल हँसा : "मेरे कारण तुम निराश हुई? क्यों भला क्या इसी लिए कि मैं अब पढ़ना नहीं चाहता? क्या इसीलिये कि मेरे नाम के पीछे पी० एच-डी० नहीं लिखा रहेगा?"

"नहीं," शैल ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया : "बेचू काका के प्रति आपकी पहले और अब की भावनाओं में धरती और आकाश का अन्तर हो गया है। मुझे ऐसी आशा नहीं थी। मैं तो सोचती थी कि उनके लिये आपके मन में अपरिचित आदर और अगम स्नेह होगा, जैसा पहले था, पर आज..."

सहसा विकल को लगा, उत्तेजना में वह अनर्थ कर बैठा। परन्तु अब देर हो चुकी थी, और तीर छूट चुका था। कही हुई बात लौटाई नहीं जा सकती थी। कुछ क्षण चुप रहा। तब जैसे अपनी सफ़ाई देते हुए बोला : "मैं क्षणिक उत्तेजना में वह सब कह गया, शैल मेरा यह मतलब कभी न था। बेचू काका के प्रति अब भी मेरे हृदय में वही आदर, वही स्नेह है जो पहले था।"

शैल व्यंग से मुस्कराई, पर विकल लक्ष्य न कर सका, क्योंकि मुस्कान केवल होंठों के कोनों पर आकर चली गई। विकल का स्वर उसे धोखा न दे सका।
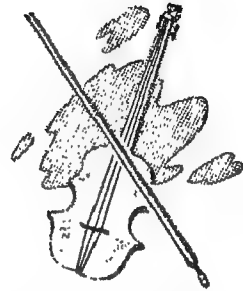
"आप आ गये, विकल बाबू," संध्या ने कहा : "मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ।"

"क्यों?" विकल ने उत्तर दिया : "मैंने तो सिर्फ़ अपना वादा पूरा किया है।"

"जिस रात आप यहां आए थे, मैं सो नहीं सकी। राजीव की याद ने इतना व्याकुल कर डाला कि मन होने लगा यमुना में कूद कर प्राण दे दूं। दूसरे दिन ही मुझे लगा आपको बुला कर बेला सुनूं।"

"तो बुलवा क्यों नहीं लिया?"

"संकोचवश। सोचती थी आप न जाने क्या समझें?"

विकल हलके से मुस्कराया : "आप ग़लत सोचती थीं। वादा कीजिए आगे ऐसा नहीं करेंगी।"

"कोशिश करूंगी।"

"कोशिश करें या न करें, पर दुखी हो उठने पर मुझे बुला ज़रूर लें।"

"अच्छा!" संध्या ने बहुत धीमे स्वर में कहा।

फिर थोड़ी देर बाद : "वेला आपको पसन्द आया ?"

"वह कलाकार का वेला है।" विकल के स्वर तन्तुओं से अपने आप निकला।

"और आप ?"

विकल मुस्कराया : "मैंने तो अभी संगीत के साम्राज्य में पांव ही रक्खा है।"

संध्या हंसी : "फल आ जाने पर पेड़ों की डालियां झुक जाती हैं।"

विकल मौन रहा।

"यहाँ से जाने के बाद राजीव आपसे मिले थे ?" संध्या ने सहसा बातचीत का रुख बदल दिया।

"हां, कई बार।"

"उन्होंने भी वेला देखा था ?"

"हां ! बड़े प्यार से उसे सहलाकर उसने मुझ से कहा था, विकल बजाओ तो, देखूं कैसा है इसका स्वर ? मैंने बजाया था, लगभग तीन घंटे तक बजाता रहा था और जब बजाना बन्द किया था, तो जैसे वह गंभीर निद्रा से जाग कर बोला था, रुक क्यों गये, विकल, बजाते जाओ।"

सुन कर संध्या की आंखों में खारे पानी की बूंदें छलक आईं। बोली : "वे भी घंटों बजाते चले जाते थे और थकने का कभी नाम न लेते थे।" एक गंभीर निश्वास उसके नासापुटों से निकला। उसने आगे कहा : "मैं टोक देती तो ध्यान भंग हो जाता, और वे कहते, 'क्यों जगा दिया, संध्या, ऐसी मादक विस्मृति से, सोया रहने देतीं, खोया रहने देतीं ?' मैं कुछ उत्तर देना चाहती, तो उससे पहले ही कह पड़ते, 'तुम मेरे साथ रहो, संध्या, तो हमारी मृत्यु के पश्चात् यह वेला देवता के समान पूज्य माना जाने लगेगा !' उत्तर में मैं कहती, 'तुम्हें छोड़कर और कहां जाऊंगी राजीव, तुम में मेरे प्राण हैं, तुममें मेरा जीवन है, तुम्हारे

बिना रह पाऊंगी भला मैं ?"

विकल चुप रहा। संध्या ने आंचल से आंसू सुखाये। वह कहती गई : "आज वे नहीं हैं, पर मैं अभागिन अब भी जी रही हूँ और न मालूम कब तक...मैंने उनकी हत्या की, पर आज भी मैं जी रही हूँ, मुझे दंड विधान की किसी धारा के अनुसार दंड नहीं मिला।"

एक क्षण ठहर कर वह फिर बिलख उठी : "उनकी मृत्यु के पश्चात् मैं जीवित नहीं रहना चाहती, पर मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि अपने प्राणों का अन्त खुद कर डाले।..."

विकल अब और अधिक चुप न रह सका। ठंडा लेप लगाने वाले स्वर में बोला : "यह क्या आप पागलपन की बातें करने लगीं, ग़लती तो आदमी से ही होती है न ? यदि भूल का प्रायश्चित मृत्यु ही हो, तो ज़रा सोचिये इतने बड़े मानव समाज की क्या दशा होगी—क्योंकि ग़लती तो हर आदमी से होती है ?"

"पर विकल बाबू, यह साधारण ग़लती नहीं है।" संध्या का स्वर दुःख, संताप और आत्म-प्रताड़ना से भरा था : "मैं हत्यारिणी हूँ।"

"कोई किसी की हत्या नहीं किया करता, संध्या जी," विकल ने गंभीर स्वर में कहा : "नहीं कर सकता। मानव का अचेतन ही उसका भाग्य विधाता होता है।" विकल यह तर्क उपस्थित कर गया तो सहसा उसे याद आया कि जैसे उसके कंठ में बैठकर उसका राजीव ही बोल रहा है।

"मैं समझी नहीं," संध्या ने कहा।

"समझने की ज़रूरत भी नहीं," विकल ने बिल्कुल राजीव के से ढंग में कहा : "बस, यह विचार आप अपने मस्तिष्क से निकाल दीजिये की आपने राजीव आनन्द की हत्या की है।"

"कैसे निकाल दूं, विकल बाबू ?" संध्या के स्वर में बहुत व्यथा थी : "समय बीतने के साथ साथ यह विचार और पक्का होता जा रहा

है।" तनिक रुकी, फिर कहने लगी : "मुझे अब इस जीवन से कोई मोह नहीं रह गया है, विकल बाबू, चाहती हूँ किसी तरह जल्दी मौत आ जाय तो अच्छा हो।"

"फिर वही पागलपन!" विकल ने कहा।

"अच्छा, अब नहीं कहूँगी, पर आप ही बताइये, इस नर्क में क्या किसी की जीने की इच्छा रह जायेगी?"

कुछ क्षण विकल ध्यान से संध्या को देखता रहा, तब बोला : "तो आप यहां से निकल क्यों नहीं जातीं?"

"निकल कर कहां जाऊं?"

"इतने बड़े संसार में कहीं जगह न मिलेगी?"

"आप नहीं जानते विकल बाबू, मेरे लिये—हमारे लिये—जो एक बार जान या अनजान में इस कीचड़ में आ पड़ी हैं, सिर्फ एक जगह है—यही अंधेरी गली। यहां से तो अब मौत के बाद ही मुक्ति मिल सकती है।"

"क्यों? क्या आप अपना जीवन फिर नये सिरे से नहीं शुरू कर सकतीं?"

संध्या मुस्कराई, उसकी मुस्कान में कितनी करुणा थी : "आपने अभी दुनिया नहीं देखी, विकल बाबू! यह बड़ी कठोर है, बड़ी निर्दय। इसके विरुद्ध चलने की कोशिश करो तो यह नागिन की तरह डस लेती है।"

विकल को याद आया, राजीव ने भी उससे एक बार कहा था कि अभी वह अनुभवहीन है।

सहसा संध्या ने कहा : "अनधिकार चेष्टा न समझें तो एक बात पूछूं, विकल बाबू!"

"पूछिये।"

"आप का विवाह हो चुका है?"

"हां । इसी जनवरी में ।"

संध्या कुछ देर तक चुप रही, तब गंभीर स्वर में बोली : "आप यहां मत आया कीजिये ।"

विकल जैसे आकाश से गिरा : "क्यों ?"

"बस, आप मेरे यहां मत आया कीजिये । मैं वादा करती हूँ कि अब कभी आपको नहीं बुलाऊंगी ।"

"लेकिन क्यों ?"

"इसीलिये कहती हूँ कि आपने अभी दुनियां नहीं देखी ।"

"आप पहेली न बुझाइये । मुझे बताइये क्यों न आया करूं मैं ?"

एक क्षण को विकल की ओर संध्या ने देखा, उस दृष्टि में क्या था वह समझ न सका । संध्या ने कहा : "आप समझने की कोशिश क्यों नहीं करते ?"

"क्या समझूं ?"

"यही कि भविष्य में आपका यहां आना किसी दशा में ठीक नहीं ।" वह रुकी, थूक का एक बड़ा-सा क़तरा निगला और तब कहा : "मैं वेश्या हूँ ।"

विकल के मस्तिष्क पर संध्या के इस वाक्य ने हथौड़े की तरह चोट की । तिलमिला कर बोला : "मैंने आपको कभी इस दृष्टि से नहीं देखा ।..."

"पर दुनियां तो यही समझती है ।"

"लेकिन मैं आप में नारी का धवलतम रूप देखता हूँ ।"

संध्या ने जैसे विकल के शब्द नहीं सुने, कहा उसने : "आप यहां आयेंगे तो बदनाम हो जायेंगे । आपका पारिवारिक जीवन अशान्तिमय हो उठेगा । और विकल बाबू, मैं नहीं चाहती कि ऐसा कुछ हो ।..."

"मैं दुनिया की परवाह नहीं करता । वह तो हमेशा वही कहा करती है जो उसे नहीं कहना चाहिये ।" आवेश में आकर विकल कह गया,

फिर स्वस्थ हो बोला : "हां, अगर आपको कोई असुविधा हो।..."

संध्या का स्वर करुण हो उठा: "विकल बाबू, अपने स्वार्थ के लिए मैं आप का जीवन नहीं नष्ट करूंगी। आप दुनियां को नहीं समझते।..."

"और न समझना चाहता हूँ।"

"पर मैं समझती हूँ और न चाहते हुए भी हमको उसकी इच्छा के सामने झुक जाना पड़ता है।"

"आप इतनी कमज़ोर क्यों पड़ती हैं?"

"मैं जीवन से हार चुकी हूँ।"

विकल कई क्षणों तक संध्या को देखता रहा। तब एकाएक विषय बदलते हुए मुस्कराकर बोला : "पर आज तो आ ही गया हूँ। चला जाऊँ?"

संध्या एकदम आतुर होकर बोली : "नहीं, नहीं!"
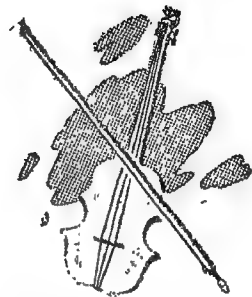
साढ़े चार बजे के लगभग शैल की आंख सहसा खुली तो उसने विकल को अपने बिस्तर पर न पाया। हड़बड़ा कर उठ बैठी। आशंका से मन भर उठा। घर-बाहर सब जगह देखा, पर विकल कहीं न था। दिल तेज़ी से धड़कने लगा। दस-पन्द्रह मिनट तक बड़ी बेचैनी से विकल की प्रतीक्षा करती रही, लेकिन तब भी वह नहीं आया तो काका को जगाया। आंखें मलते हुए काका ने कहा : "क्या है बेटी ?"

संकोच ने सहसा उसे घेर लिया, लेकिन उसने कोशिश करके उसे अपने से दूर झिटक दिया, कहा : "वे कहां हैं, काका ?"

"कौन ? भैया ?" बेचू काका एकदम उठकर खड़े हो गये।

"हां, काका !"

काका ने बंगले में, बाग में और आसपास खूब अच्छी तरह देखा, विकल कहीं न दिखाई दिया। वे लौटकर फाटक पर ही पहुँचे होंगे कि शैल आतुर, अधीर, चिन्तायुक्त स्वर में बोली: "नहीं मिले, काका ?"

काका ने सिर हिलाकर उत्तर दिया : "नहीं।" फिर बहुत धीमे जैसे अपने आप बुदबुदाये : "तो आज रात भैया फिर बाहर चले

गये !"

काका के कंठ से ये शब्द अपने आप फूट पड़े। वह बिल्कुल न चाहता था कि वह भैया के विषय में कुछ अन्यथा सोचे, पर विकल रात में बाहर चला गया था। कहां ?

काका के कंठ से बरबस फूट पड़े शब्द शैल के कानों से जा टकराये, तुरन्त ही उसके होठों से फूटा: "इसके पहले भी कभी वे रात में बाहर जा चुके हैं क्या, काका ?"

जो काका न चाहते थे, वही हो गया। अपने को अपराधी अनुभव करते हुए उन्होंने बहुत धीमे स्वर में उत्तर दिया: "हां, बिटिया।"

"कब ?" शैल ने दूसरा प्रश्न किया।

"बांदा जाने से पहले। एक महीना हो गया होगा।"

शैल के मुख पर उदासी के बादल सिमट आये। आंखें बरस पड़ने को हो उठीं। हृदय जैसे रुक-रुक कर धड़कने लगा। बहुत कोशिश करके वह सिर्फ़ एक शब्द कह सकी: "कहां ?"

काका के मानस में एक भयानक सन्देह जाग्रत हो उठा था और वे सिहर उठे थे। लेकिन अपना सन्देह शैल पर प्रकट करना उन्होंने ठीक नहीं समझा। धीमे स्वर में बोले: "क्या जाने, बिटिया !"

काका ने उत्तर तो दे दिया, पर शैल इतने से ही सन्तुष्ट न हो सकी। उसके मानस में उतना ही भयानक सन्देह रेंग चुका था—आधी रात, युवक विकल, पत्नी का सूना कमरा। आखिर वह कहां जा सकता है ? क्या...क्या...? वह बहुत व्यथित हो उठी। लगा, अगर वह थोड़ी देर और काका के सामने खड़ी रही, तो वहीं रो पड़ेगी। घूमकर कमरे में पहुँची। आंसू भारी हो उठे, वह उन्हें सम्हाल सकने में असमर्थ हो गई तो वे कपोलों पर प्रवाहित होने लगे।

"नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता," वह अपने आप कह पड़ी: "वे कभी ऐसा नहीं कर सकते, कभी नहीं।" परन्तु उसके शब्द

सान्त्वना न दे सके। आंसू बहते रहे।

बाहर फाटक के पास खड़े काका सोच रहे थे कि क्या सचमुच भैया...क्या सचमुच उनमें कोई अवगुण...क्या वे कहीं और...नहीं, नहीं फूल जैसी कोमल बहू को छोड़कर वे भला जा ही कहां सकते हैं ?... नहीं...

दोनों व्यक्तियों के मस्तिष्क में एक साथ बज उठा—तब वे रात में उठकर कहां गये, क्यों गये ?

परन्तु उनके इस प्रश्न का उत्तर विकल के सिवा और कौन देता ?

"यहां क्या कर रहे हो, काका, इस समय ?"

काका चौंक पड़े। घूमकर देखा। सामने मुस्कराता हुआ विकल खड़ा था। उसके हाथ में बेला था।

"तुम्हीं को खोज रहा था भैया," काका ने उत्तर दिया : "घर में तुम्हें न पाकर बिटिया बहुत घबरा उठीं थीं।"

विकल हंसा : "जैसे तुम, वैसी ही तुम्हारी बिटिया। अरे, मुझे कोई उठा थोड़े ही ले गया था।"

कमरे में पहुँचा। शैल अब भी सुबक रही थी। बेला अलमारी में रख कर वह उसके पास बैठ गया। उसके बालों पर हाथ फेरता हुआ कोमल स्वर में बोला : "शैल !"

शैल ने करवट ली, तो उसका सिर विकल की जांघ पर आ रहा। मृणाल सी बांहें उसने विकल के गले में पहना दीं, और सुबकते हुए कहा : "कहां चले गये थे आप ?"

विकल ने मुस्कराकर स्नेह से शैल के कपोल पर एक हलकी सी चपत लगाई, और कहा : "यमुना किनारे बैठा बेला बजा रहा था।"

कुछ देर पहले उसने संध्या से कहा था: "मैं दुनिया की परवाह नहीं करता। वह तो हमेशा वही कहा करती है जो उसे नहीं कहना चाहिये।" शैल के प्रश्न का उत्तर दे चुका तो सहसा उसके मस्तिष्क में गूंजा कि

उसने संध्या से कितनी ग़लत बात कही थी, वह जरूर दुनियां की परवाह करता है और उसके सामने झुक भी जाता है। ऐसा न होता तो वह शैल से झूठ क्यों कहता, क्यों न कह देता कि वह संध्या के यहां गया था ?

परन्तु आंखें उठा कर शैल ने विकल की आंखों में देखा। विकल की आंखों में धोखा न था—बड़ी कुशलता से अपने मन के भावों का प्रतिबिम्ब मुख पर पड़ने से उसने बचा लिया था। शैल उन आंखों के भीतर हृदय तक न पहुँच सकी, जहां कोई और ही कहानी लिखी थी। उसने आश्वस्त स्वर में कहा : "अकेले डर नहीं लग रहा था ?"

विकल हसा : "डर किसका ?"

शैल की तरल आंखें स्नेह से भीग उठीं। उसने कहा : "पर ऐसे मत चले जाया कीजिये।"

"नहीं जाऊँगा।"

"पर भला ऐसे भी बिना बताये चले जाने की क्या आवश्यकता थी ?" शैल के स्वर में खुशी थी।

विकल मुस्कराया : "मन हुआ। चला गया।"

"तो बता कर जाते।"

"किसे ?"

"मुझे या काका को ?"

"यानी इसी को कहते हैं दिमाग़ चल जाना। अरे, मैं तो सो सकता ही न था, तुम लोगों की नींद भी ख़राब करता !"

शैल हँसी। बोली : "हां, हां, मालूम है, आप कितना ध्यान रखते हैं !"

"क्योंकि न रक्खें तो तुम्हारा जीना मुहाल हो जाय !"

विकल हंसा। फिर दोनों हंस पड़े।

तनिक देर बाद जब शैल बोली, तो उसका स्वर गंभीर था : "अमल

बाबू इधर सात-आठ दिन से नहीं आए ?" शैल ने पूछा।

"थीसिस लिखने में व्यस्त है न ! फ़ुर्सत न मिल पाती होगी।"

विकल के मुख से 'थीसिस' निकला, तो उस के शब्द शैल के मस्तिष्क में बज उठे : "हां, वेचू काका ठीक कहते थे, बिल्कुल ठीक कहते थे। मैं बिल्कुल नहीं पढ़ता। बिल्कुल नहीं पढ़ना चाहता। मुझे डॉक्टरेट नहीं चाहिये। मैं नहीं पढ़ूंगा।" याद आई यह बात तो शैल के हृदय को धक्का लगा। क्या सचमुच विकल पढ़ना नहीं चाहता ?

ज़रा रुक कर साहस करके उसने कहा : "आपको भी तो 'थीसिस' लिखनी है न ?"

विकल ने शैल की ओर देखा। शैल को उसकी आँखों में उत्तेजना एवं क्रोध के कोई लक्षण न दिखलाई पड़े। विकल ने कहा : "हाँ, लिखनी तो है।" उसका स्वर भी साधारण और कोमल था।

उसका साहस बढ़ा। आगे पूछा : "कब शुरू करेंगे ?"

"बहुत जल्दी।" विकल मुस्कराया, फिर बोला : "देखता हूँ मेरी चिन्ता तुम्हें मुझसे अधिक है।"

"है ही, नहीं तो आपका जीवन दुश्वार न हो जाय।"

दोनों हँसे।
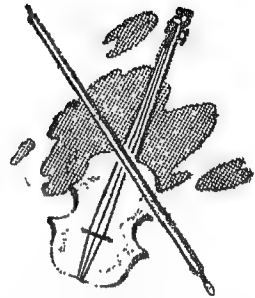
बिलख कर बेचू काका ने कहा : "भैया को समझाओ, अमल बाबू, उन्हें न मालूम क्या हो गया है ?"

"क्या हो गया है काका, विकल को ?" अमल ने शान्त स्वर में कहा : "अधीर मत होओ। तुम भी ऐसे हो जाओगे तो कैसे काम चलेगा ? विकल के विषय में मुझे बताओ तो कुछ।"

बेचू काका ने डबडबाई आँखों से अमल की ओर देखा। कुछ कहना चाहा तो होंठ हिल कर रह गये। फिर बहुत कोशिश करके कहा : "अमल बाबू, तुम्हें मालूम है, मैं भैया को कितना प्यार करता हूँ ! एक बार मेरी जान की भी उनके लिये जरूरत हो, तो मैं खुशी से दे सकता हूँ। मैंने अपना लहू सुखा कर उन्हें पाला है ! मुझसे उनका नष्ट होना नहीं देखा जाता।"

आँसू उमड़ आये और कंठ रुद्ध हो गया।

ज़रा देर चुप रह कर अमल ने कहा : "तुम तो जानते ही हो काका, मैं इधर बहुत व्यस्त रहा हूँ। विकल से बस दस-पन्द्रह मिनट ही बातें कभी-कभी कर पाया हूँ। विकल बदल गया है यह तो मैंने देखा है, लेकिन

तुम मुझे कुछ विस्तार से बताओ न !"

"छुट्टी तो है न तुम्हें, अमल बाबू, अब ?" काका ने पूछा।

"हां, काका।"

"थीसिस लिख चुके हो ?" थीसिस कहते समय बेचू काका का कंठ फिर भर आया।

"हाँ, काका।"

"तब अन्दर आओ। कमरे में बैठो। वहीं बताऊँगा।"

"विकल कहाँ गया है, काका, कुछ मालूम है ?"

"कभी मालूम रहा है कि आज ही मालूम होगा !"

दोनों कमरे में पहुँचे। अमल को विकल के कमरे का यह नया रूप देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उस पर क्रोध भी आया। सदा स्वच्छ और चंदन-सा महकता रहने वाला कमरा कूड़े के ढेर की तरह बदबू कर रहा था। रोज़ बदला जाने वाला मेज़पोश शायद महीनों से नहीं बदला गया था। दीवारों पर टंगी तस्वीरों के पीछे अगणित मकड़ी के जाले लग गये थे। अख़बार, पत्रिकाएँ, कापियां, कागज़ आदि, जो कभी करीने से अलमारियों में सजे रहा करते थे, मेज़, चारपाई, कुर्सी, सोफा, धरती पर हर जगह बिखरे पड़े थे। धीरे-धीरे चलकर मेज़ के पास पहुँचा। एक पुस्तक का खुला हुआ पृष्ठ काले 'पेपरवेट' से दबा हुआ था और उस पर धूल की इतनी मोटी परत जम गई थी, कि अक्षर भी अस्पष्ट हो उठे थे। किताब के पास बढ़िया कागज़ की एक कापी खुली थी, और 'कैप-सहित' फाउन्टेनपेन। कापी के पृष्ठ पर धूल की परत के नीचे, पृष्ठ के ऊपर के बाँये कोने से एक तारीख झाँक रही थी—दस अप्रैल, और पेन की स्याही निब पर सूख चुकी थी। आलमारी के पास पहुँचा। उसमें रक्खी उपेक्षित पुस्तकों का भी वही हाल था, जो मेज़ पर खुली पड़ी पुस्तक का—धूल की मोटी परत, उन्हें छुए जाने का कोई चिह्न नहीं ! अमल के नासापुटों से गंभीर निश्वास निकला !

दस अप्रैल ! तो क्या दस अप्रैल के बाद विकल ने किताबें खोल कर भी नहीं देखीं ! विचार मात्र से ही विकल के प्रति उसका मन व्यथा से भर उठा। विकल की थीसिस ?

एक बार फिर उसकी दृष्टि कमरे की चारों दीवारों पर फिसलती हुई काका के मुख पर टिक गई।

"बैठ जाओ, अमल बाबू !" काका ने कहा।

अमल एक कुर्सी पर पड़े कागज़ों को हटाकर उस पर बैठ गया और काका उसके पास धरती पर।

अजीब से स्वर में काका ने कहा : "यह भैया का कमरा है !"

काका के इस एक वाक्य ने अमल के अन्तर को स्पर्श कर लिया।

"भैया को पाकर मैं अपने बच्चे को भूल गया था, अमल बाबू," काका ने गम्भीर, दुःखित स्वर में कहा : "पिता के—अतृप्त पिता के दिल में जितना प्यार हो सकता है, सब का सब मैंने उन पर बरसा दिया था। मुझे सुख हुआ था, संतोष मिला था। मेरी गोद में रहकर वे बढ़े। उनकी उम्र के साथ साथ मेरे मन में पलने वाली एक अभिलाषा भी बढ़ने लगी। वे दर्जे पर दर्जे पास करते गये। मुझे कितना सुख होता। यहां आकर जब उन्होंने एम० ए० पास कर लिया तो मुझसे अधिक खुश शायद खुद न रहे होंगे। मुझे पूरा विश्वास हो गया कि दो वर्ष के भीतर ही उन्हें डाक्टरेट भी मिल जायगी।"

अमल ध्यान से काका को देख रहा था। काका के चेहरे पर एक अनोखा प्रकाश क्षण भर को आया और चला गया, और तब उनका मुख फिर विषादमय हो उठा।

"भैया का ब्याह हुआ," काका ने फिर कहना प्रारम्भ किया : "और मुझे लगा मुझ सा सुखी इस संसार में दूसरा नहीं है। मैंने भगवान की देहरी पर माथा टेक दिया कि वह मेरी एक-एक कर सारी इच्छाएं पूरी करता जा रहा है। परन्तु अब ?" काका का स्वर कुछ भारी हो उठा।

फिर एक बार भगवान पर से मेरा विश्वास उठने लगा है। मुझे लगता है भगवान मुझे सुखी नहीं देख सकते। तुम्हारे साथ पाँच वर्षों से रहे हैं, पर मैंने कभी उन्हें ऐसा नहीं देखा। अस्तव्यस्त कपड़े, बिखरे बाल, सूखा मुखमंडल, बिल्कुल पागल जैसे मालूम पड़ते हैं। शरीर सूख गया है, चेहरे पर रहने वाली चमक गायब हो गई है, बड़ी काली आंखें छोटी होकर गड्ढों में धंस गई हैं और उनके चारों ओर काले दायरे खिंच गये हैं। कुन्दन सा चमकता रहने वाला शरीर जैसे झुलस कर काला पड़ गया है। तुम तो इधर दो माह से इलाहाबाद में थे नहीं। अब देखोगे तो पहचान नहीं पाओगे।..."

काका की आँखें छलछला आई। ये रुके, शायद आँसू रोकने की कोशिश कर रहे थे। अमल मौन रहकर उनके बोलने की प्रतीक्षा करता रहा।

अपने को संयत करके काका ने फिर कहना शुरू किया : "कई महीनों से भैया ने किताबों को हाथ नहीं लगाया। उन्हीं किताबों को, जिनके बिना वे जी नहीं सकते थे, आज वे उठाकर भी नहीं देखते। बिटिया यहां रहने आई, तो उन्हें परेशान कर मारा। हार कर बेचारी कानपुर चली गई। अभी दो तीन दिन हुए मैं वहां से लौटा हूँ। उनकी हालत देखकर कलेजा मुंह को आता है। दीदी अलग बीमार रहती हैं, और भैया हैं कि उन्हें कुछ सूझ ही नहीं पड़ता। यहां बैठे रहेंगे तो रात-रात भर बेला बजायेंगे, नहीं तो एक-दो दिन को गायब हो जायेंगे। बिटिया के रहते भी उनका यही हाल था। वे बेचारी रात-रात भर बिना खाये-पिये उनकी राह ताका करतीं। आखिर जागते-जागते भूख से थक कर कुर्सी पर या धरती पर ही सो जातीं। मैंने सोचा कि उनका यहां ज्यादा रहना ठीक नहीं, जबरदस्ती उन्हें दीदी के पास भेज आया। वे तो यहां से जाने को तैयार ही न होती थीं।

"अमल बाबू, भैया अकेले कमरे में बैठे-बैठे जाने क्या बड़बड़ाया

करते हैं—जैसे किसी से बातें कर रहे हों—कभी जोर से बातें करते हैं, कभी हंसते हैं, कभी गम्भीर हो जाते हैं, जैसे कोई पागल हो। क्या सचमुच..."

"अरे, नहीं, काका," अमल ने काका को पूरी बात कहने का मौका न दिया : "तुम भी क्या सोचने लगे ? विकल बिलकुल ठीक है। उसे कुछ नहीं हुआ। बहुत भावुक हो उठता होगा, तो अपने आप कुछ कहने लगता होगा।"

"यही नहीं, अमल बाबू," काका का स्वर धीमा और जैसे रहस्यमय हो गया था : "एक और भयानक बात है।"

"क्या ?"

"मुझे लगता है कि भैया..." काका के मुख से बड़ी कठिनता से निकल पाया, पर कोशिश करके भी वे आगे न कह सके।

"क्या लगता है काका ?"

"मेरा मतलब है कि...बिटिया को त्यागकर..."

अमल एकदम उछल पड़ा : "क्या कहते हो, काका ? ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

काका के होंठों पर एक अत्यन्त करुण मुस्कान आई, शब्द उनके मुख से जैसे घसिटते हुये निकले : "पहले मैं भी यही सोचता था, अमल बाबू..."

"यह असम्भव है, काका, विकल ऐसा नहीं कर सकता।" अमल ने ज़ोर देकर कहा।

"पर यह सच है," काका के कंठ को बलपूर्वक मरोड़ कर ही जैसे ये शब्द निंकल पाए हों : "भैया..."

अमल का चेहरा लाल हो उठा, क्रोध, आवेश और लज्जा तीनों के कारण। ज़रा तेज़ स्वर में उसने कहा : "कौन है वह ?"

"रंडी एक।"

अमल के हृदय पर जैसे किसी ने दहकता अंगारा रख दिया। अन्तर उसका तिलमिला उठा, पर बलपूर्वक स्वयं को शांत रखते हुए उसने पूछा : "नाम मालूम है, काका ?"

"हां ! बाजार में तो उसे शमा बाई कहते हैं, पर भैया के मुंह से मैंने संध्या सुना है।"

उत्तेजित होकर अमल कुर्सी से उठ कर टहलने लगा।

"अमल बाबू," काका ने तनिक देर बाद फिर कहा : "अपनी ताकत भर कोशिश मैं कर चुका, रो रो कर बिटिया अधमरी हो गई, पर भैया पर किसी का असर न पड़ा। जाने कैसा जादू उस चंडालिन ने उन पर कर दिया है। आप भी उन्हें..."

"यह सब क्या कहे जा रहे हो, काका ?" अमल ने काका को बात पूरी करने का मौका न देकर कहा : "मुझे अगर यह सब पहले से मालूम होता, तो क्या अब तक मैं इसी तरह बिना कुछ किये बैठा रहता ? मैं विकल के लिये सब कुछ छोड़ देता, काका, उसे इस गड्ढे में गिरने से बचाने के लिये मैं सब कुछ कर डालता। अब भी मैं कुछ उठा न रखूंगा। मैं उसे समझाऊंगा, विनती करूंगा, किसी न किसी तरह उसे मना लूंगा। मैं उस वेश्या के पास जाऊंगा, काका, उससे कहूँगा कि वह क्यों किसी स्त्री का सुहाग लूटना चाहती है। मैं उसके पैर छुऊंगा, उससे अनेक व्यक्तियों के सुख-संतोष की भीख मांगूंगा, मैं विकल के लिए सब कुछ करूंगा, काका, सब कुछ करूंगा..."

विकल बेला लिये मिन्टो पार्क के पास वाले यमुना के पक्के घाट पर बैठा था। यह जीर्ण-शीर्ण घाट किसी युग के पक्के घाट का अवशेष मात्र लगता है। बगल में टूटी-फूटी दीवारें-सी हैं, जो पानी में धंसी हुई हैं। एक युग में जब नदियां व्यापार का प्रमुख साधन थीं, इन दीवारों पर लगे कड़ों में व्यापारिक नौकाएं बांधी जाया करती थीं।

उसी पुरातन घाट पर बैठा विकल राजीव के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने राजीव से कहा था कि बंगले में उन लोगों का मिलना ठीक नहीं क्योंकि उसके घर वाले उसे पसन्द नहीं करते, और मुस्करा कर राजीव ने उसे यह मिलन स्थल बताया था। उसने कहा था कि वह ठीक ग्यारह बजे आ जायगा, और विकल साढ़े दस बजे से ही वहां पहुँचकर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

आठ सितम्बर थी उस दिन—ठीक एक बरस पहले आठ सितम्बर को पहली बार उसने राजीव को देखा था। चाँदनी पिघल कर यमुना की लहरों पर तिर रही थी। उसने अपनी कलाई पर बंधी घड़ी को देखा। ग्यारह बजने में पाँच मिनट बाकी थे।

एक-एक सेकेन्ड करके वे पाँच मिनट सरकने लगे। उस पूरे समय में विकल ने शायद हर सेकेन्ड में एक बार सड़क की ओर देखा—राजीव तो आ नहीं रहा है !

उसकी घड़ी की तीन सुइयों ने चलकर ठीक ग्यारह बजाये। सामने, मिन्टो पार्क के बगल में स्थित मिलटरी आफ़िस में ग्यारह का गजर बजा। उसकी आवाज़ वातावरण में गूँजकर घुली ही थी, कि यमुना पार नैनी सेन्ट्रल जेल का गजर बजा। तब विश्वविद्यालय की घड़ी ने संगीतात्मक धुन में पहले जल्दी-जल्दी सोलह बार, फिर ज़रा रुक-रुक कर ग्यारह बार घंटे बजाये।

विकल ने ऊपर से आने वाली घाट की जीर्ण-शीर्ण सीढ़ियों की ओर देखा—मुस्कराता हुआ राजीव उसकी ओर बढ़ रहा था। उसे देखकर विकल प्रफुल्ल हो उठा।

"तुम आ गये, राजीव!" विकल ने उच्छ्वसित स्वर में कहा : "मैं आध घंटे से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"मैं देर से तो आया नहीं?" राजीव ने कहा।

"नहीं, तुम ठीक समय पर आये हो, मैं ही पहले आ गया था। आज मैं तुमसे कुछ गंभीर बातें करना चाहता हूँ, तुम्हें कोई एतराज़ तो नहीं?"

"है। मैं तुम्हारा बेला सुनना चाहता हूँ।"

"वह तो होगा ही। पर तुम्हें हो क्या गया है? बीमार थे क्या?"

"नहीं तो, अभी तक तो बीमार नहीं पड़ा।"

"आश्चर्य है। दिक़ के रोगी जैसे मालूम पड़ते हो।"

राजीव हौले से मुस्कराया। बोला : "लगता है, कुछ चढ़ा आये हो।"

"अभी तक तो शुरू नहीं किया," विकल भी मुस्कराया : "अगर कहो तो..."

"अच्छा, यह बकवास समाप्त," राजीव ने रोकते हुए कहा : "अब काम की बात करो। बेला बजा रहे हो ?"

"ज़रूर !"...

डेढ़-दो घंटे बाद राग जब थमा तो राजीव ने कहा : "अब वह समय अधिक दूर नहीं, विकल, जब तुम्हारी कला की पूजा होने लगेगी।"

विकल ने राजीव के इस कथन का कोई उत्तर नहीं दिया, बोला : "अब मेरे प्रश्नों के उत्तर दो।"

राजीव ने कुछ क्षणों तक ध्यान से विकल को देखा, तब कहा : "पूछो।"

"तुम्हें याद होगा, एक बार तुमने कहा था, नारी छलना है, प्रवंचना है, और है पुरुष की सम्पूर्ण शक्ति हरण कर लेने वाली दानवी। याद है न ?"

"हां, कहा था।"

"कई महीने हो गये जब तुमने यह बात कही थी। तुम तो शायद भूल भी गये हो, पर मेरे मस्तिष्क में यह सदा उथल पुथल मचाती रही। पर राजीव, बहुत कोशिश करने पर भी मैं इसकी सत्यता को सिद्ध न कर सका।"

राजीव मुस्कराया : "क्या किया था तुमने यह सिद्ध करने के लिये ?"

"दो नारियां मेरे सम्पर्क में हैं," विकल ने कहना शुरू किया, परन्तु आगे न बोल पाया, क्योंकि राजीव ने टोंक कर कहा : "तीन कहो।"

"नहीं, दो ही, क्योंकि दीदी को मैं नारी नहीं मानता। उनमें कुछ ऐसा है जो साधारण मानव में, साधारण नारी में नहीं होता। मैं नहीं जानता वह 'कुछ' क्या है, बस केवल उनका आदर करता हूँ, उनके सामने श्रद्धा से नत हो जाता हूँ !...हाँ, तो दो नारियाँ मेरे सम्पर्क में

हैं—शैल और संध्या, शैल से मैं जान बूझ कर खिंचा-खिंचा रहने लगा, उससे ठीक से बात न करने लगा, छोटी-से-छोटी बातों में उसे खिझाने, चिढ़ाने, फिर क्रोधित होने लगा, सदा उसकी इच्छा के विरुद्ध काम करने लगा, फिर भी वह मुझसे दूर नहीं हटी, उसने मुझे छला नहीं, जितना अधिक मैं उसके प्रति दुराव प्रदर्शित करता उतने ही अधिक स्नेह और समर्पण के साथ वह मेरे समीप आने की कोशिश करती। और संध्या? मैं उसका आदर करता हूँ, उसके दुर्भाग्य पर मुझे दुःख है, उसकी व्यथा पर आँसू बहाने को जी चाहता है, कभी कभी मैं उससे ऐसे व्यवहार करता हूँ मानो मैं उसे साधारण वेश्या से अधिक नहीं समझता। लेकिन फिर भी उसने अभी तक अपने कोठे से नीचे नहीं भगा दिया। और तुम कहते हो, नारी छलना है, प्रवंचना है?..."

विकल का यह विवेचन राजीव के लिये केवल विनोद की वस्तु सिद्ध हुआ। वह ज़ोर से हंस पड़ा। विकल ने सहसा अप्रतिभ होकर उसकी ओर देखा। थोड़ी देर हंसते रहने के पश्चात् राजीव ने कहा: "कहता था न, तुम इतने भोले हो कि बुद्धू कहने को जी चाहता है।"

विकल को राजीव का यह परिहास और व्यंग अच्छा न लगा। तनिक चिढ़े हुए से स्वर में बोला: "फिर क्या इसका भी कोई 'कोर्स' होता है?"

"न, न, नाराज़ मत होओ," राजीव ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया: "क्रोध करने से स्वास्थ्य गिरता है। यह सच है कि इसका कोई 'कोर्स' नहीं होता, पर तुम्हारा यह ढंग बिल्कुल गलत है। पूछो, क्यों।"

"बताओ।"

"तुम्हारे ऐसा करने के बाद अगर नारी नाता तोड़े तो उससे उस की बिल्कुल उल्टी बात सिद्ध होती है, जो तुम सिद्ध करना चाहते हो। दोष तुम्हारा ही हो जाता है।"

तनिक देर मनन करने के पश्चात् विकल ने कहा: "तुम ठीक

कहते हो। इस पहलू पर कभी मेरा ध्यान ही न गया था। फिर ?"

"कुछ नहीं," राजीव ने उत्तर दिया : "साधारण रूप से रहो। किसी तरह की उत्तेजना अथवा किसी तरह का परिवर्तन दिखाने की ज़रूरत नहीं। जीवन के पन्ने आप से आप खुलते चले जायेंगे और एक दिन वह भी आयेगा, जब वह पन्ना भी, जिसमें मेरी बात लिखी है, खुल जायगा, और तुम्हें विश्वास हो जायगा।"

विकल चुप रहा।

"इसके अलावा," राजीव ने आगे कहा : "अभी संध्या और शैल का तुम में कुछ स्वार्थ निहित है, जिस दिन वह समाप्त हो जायगा, तुम्हारा उनके लिए कोई मूल्य न होगा।"

"लेकिन राजीव," विकल ने आपत्ति की : "यदि पुरुषों में स्त्री का स्वार्थ निहित होता है, तो स्त्रियों में पुरुषों का स्वार्थ भी तो होता है।"

"ठीक है," राजीव ने उत्तर दिया : "पर कहते समय यह क्यों भूल जाते हो कि पुरुष नारी पर उतना निर्भर नहीं करता, जितना नारी पुरुष पर।"

"मैं तुम्हारी बात से सहमत नहीं हूँ," विकल ने कहा : "पुरुष और नारी एक दूसरे पर समान रूप से निर्भर हैं, न कम न अधिक। इसीलिये दोनों के स्वार्थ भी समान ही होते हैं।"

राजीव मुस्कराया : "हर आदमी को स्वतन्त्र विचार बनाने और रखने का अधिकार है।"

विकल ने हाथ कानों पर रखते हुए कहा : "अच्छा, छोड़ो इस पचड़े को। मेरी समझ में कभी कुछ नहीं आयेगा। आगे जो बीतेगा, उसे देखूंगा।"

"यही तो मैं भी कहता हूँ," राजीव ने उत्तर दिया : "अभी से परेशान होने की क्या ज़रूरत ? जीवन के पन्ने आप से आप खुलते जायेंगे, और एक-एक तथ्य तुम्हारे सामने आता जायगा।"

"और हां, राजीव, एक बात तुम्हें याद है ?" सहसा विकल को कुछ याद आया : "आज से ठीक एक साल पहले मैंने पहली बार तुम्हें देखा था ।"

"यानी हमारी मित्रता एक साल पुरानी हो गई।" राजीव हंसा ।

"और कभी हममें झगड़ा नहीं हुआ !" विकल हंसा ।

"तो आओ, तुम्हारी यह साध भी क्यों अधूरी रह जाये ? निपट ही लें ।"

दोनों हंस पड़े ।

"विकल !" अमल का गंभीर स्वर सुनकर विकल ने मुड़कर उसकी ओर देखा। अमल के मुख पर सदा खिली रहने वाली मुस्कान न थी। उसके अधर एक दूसरे से चिपके हुए थे। आंखों में गंभीरता और किसी दुःख की छाया थी और मुख का भाव स्थिर था।

उसने मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा : "आओ, अमल !"

बहुत धीरे-धीरे चलकर अमल विकल के सामने की कुर्सी पर बैठ गया। एक बार उसकी दृष्टि चारों दीवारों पर घूमी और मेज़, किताबों की आलमारी, वेला का निरीक्षण करती हुई विकल के मुख पर ठहर गई। तब बोला : "आज यह कमरा निर्जीव क्यों हो उठा है, विकल ?"

एक क्षण को विकल अमल की बात का मतलब न समझ सका। सहसा समझा तो कृत्रिम मुस्कान के साथ बोला : "क्या सचमुच ?"

अमल को लगा, विकल कितना बदल गया है कितना बनावटी हो गया है उसका व्यवहार। बोला : "तुम हँस लेते हो, विकल ?"

विकल फिर जबरदस्ती मुस्कराया : "मैं तो यही समझता हूँ। और

फिर ऐसा हो ही क्या गया है ?" वह समझ गया कि अमल आज उससे बातें करने आया है और करके ही जायगा। स्वयं को उसने सन्नद्ध किया। उसने निश्चय कर लिया कि अपने और राजीव के बीच वह किसी को नहीं आने देगा।

"किसी की बरबादी पर तुम हँस सकते हो ?" अमल ने पूछा।

"मैं ऐसा वहशी नहीं हूँ।" विकल का उत्तर था।

"पर इस कमरे में बैठकर मुस्करा सकते हो ?"

"क्यों, क्या मुस्कराना भी मना है ?"

"इस कमरे के साथ तुम्हारे जीवन की मधुरतम स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। क्या उनकी याद करके तुम्हारी आंखों से दो आंसू कभी नहीं चू पड़ते ?"

"मैं समझा नहीं।"

"तुम अच्छी तरह समझते हो," अमल ने कहा : "फिर भी न समझने का नाटक करते हो और आशा करते हो कि मैं इसे सच समझूंगा। तुम मुझे धोखा देने की कोशिश तो कर ही रहे हो, साथ ही खुद को भी ठगना चाहते हो। पर सोचो तो, ऐसा कहाँ चल सकता है ?"

"तुम क्या कह रहे हो, अमल ?"

"अब भी नहीं आया तुम्हारी समझ में ?" अमल के होंठों पर एक व्यंगात्मक मुस्कान बिखर गई : "शायद तुम्हें कभी इस कमरे से बेहद प्यार था। इसकी कोई चीज़ कभी इधर-उधर हो जाती थी, तो तुम्हारा पारा फौरन चढ़ जाया करता था। तुम कहा करते थे कि इस कमरे की साज संवार तुम जीवन भर किसी प्रेयसी की तरह करते रहोगे। क्या अब तुम्हें ज़रा भी ध्यान नहीं रहता कि एक बार इसकी चीज़ों को देख तो लो।"

विकल मुस्कराया, वैसी ही कृत्रिम मुस्कान, बोला : "मैंने कहा, अमल इन सब बेकार की बातों में अपना दिमाग़ मत खपाओ। बैठने-

लेटने की जगह तो कमरे में है न ?"

"कमरा तो खैर कोई बात नहीं, किसी समय भी साफ़ किया जा सकता है," अमल ने कहा : "पर क्या आजकल अपने शरीर पर ध्यान देने का भी समय नहीं मिलता तुम्हें ? कभी आइने में शक्ल देखी है अपनी ? दिक़ के रोगी से मालूम पड़ते हो !"

फ़ौरन ही विकल को उस रात की बात याद आई जब उसने राजीव से कहा था, "दिक़ के रोगी जैसे मालूम पड़ते हो।"

वह मौन रहा।

"तुम्हारी मेज़ पर एक किताब, एक कापी और पेन खुले हुए पड़े हैं," अमल ने ही फिर कहा : "सभी पर धूल की मोटी सी परत जम गई है। पेन के निब पर सूखकर स्याही कड़ी पड़ गई है कापी पर कोने में दस अप्रैल लिखा है। विकल, क्या सचमुच तुमने दस अप्रैल के बाद किताबें नहीं छुईं ?"

"मैं अब पढ़ना नहीं चाहता, अमल।"

"क्यों ?" अमल जैसे आकाश से गिरा।

"क्योंकि मैं समझ चुका हूँ कि मेरी ज़िन्दगी में—कम से कम आगे की ज़िन्दगी में—इस अध्ययन का कोई महत्व नहीं है, ये पुस्तकें मेरे किसी काम नहीं आयेंगी। फिर पढ़ने से लाभ ?"

अमल एक क्षण विकल की ओर देखता रहा, तब बोला : "फिर क्या करना चाहते हो ? क्यों अपने जीवन को नष्ट कर रहे हो ?"

अमल को और कुछ कहने का मौका न देकर विकल ने कहा : "मैं जानता हूँ, अमल क्या करने से मेरा जीवन नष्ट होगा और क्या करने से ऊपर उठेगा। मुझे किसी भी सम्मति की अपेक्षा नहीं।"

अमल को बुरा लगा। फिर भी उसने कुछ कहा नहीं।

"मेरी समझ में नहीं आता," विकल ने ही फिर कहा : "कि लोग मेरे कामों में क्यों अपनी टांग अड़ाते हैं। मैं उनके पास जाता नहीं, उनके

विषय में कुछ कहता नहीं, उन्हें कभी बिना मांगी सलाह नहीं देता, फिर भी पता नहीं क्यों वे मेरे पीछे पड़े रहते हैं—ऐसा मत करो, वैसा मत करो। मैं पूछता हूँ, क्यों न करूं वैसा? अपने आप करता हूँ, किसी का कुछ लेता तो नहीं।"

अमल को आश्चर्य था, दुःख था कि विकल एक वर्ष के भीतर ही इतना बदल गया। उसने कभी न सोचा था कि ऐसा भी हो सकता है।

एक क्षण को उसे लगा कि वह उठकर चल दे और विकल को अपने भाग्य पर छोड़ दे। फिर शैल का ध्यान आया तो विचार बदल गया। उसने कहा : "यह ठीक है कि तुम जो कुछ करते हो अपने आप करते हो, पर तनिक सोचो तो तुम सही कर रहे हो या ग़लत?"

विकल ने एक ज़ोर का ठहाका लगाया : "तुम मुझे बताने आये हो अमल, कि मैं सही कर रहा हूं या ग़लत? क्या तुम्हारा ख्याल है कि मेरे पास ज़रा भी अक्ल नहीं है?"

"है, इसमें सन्देह नहीं, पर तुमने उससे काम लेना बन्द कर दिया है।"

"यह तुम कैसे कह सकते हो?"

"तुम्हारे जीवन का लक्ष्य क्या है? बताने का कष्ट करोगे?"

"ख़ुशी से!" विकल ने उत्तर दिया : "मेरा लक्ष्य है वेला। मैं उस पर पूर्णाधिकार प्राप्त करना चाहता हूँ।"

अमल की तीक्ष्ण दृष्टि ने क्षण भर में ही विकल का निरीक्षण किया तब वह व्यंग से बोला : "और यह पूर्णाधिकार तुम्हें वेश्या कोठे पर मिलता है?"

यह सुनकर विकल का चेहरा क्रोध से लाल हो उठा। उसकी नाक फड़क उठी और आँखों में लाल डोरे उभर आये। ज़ोर से बोला : "अमल, तुम्हें मेरे बीच में बोलने का अधिकार नहीं। मुझे मालूम है मैं क्या कर रहा हूं। मुझे मालूम है कि जो मैं कर रहा हूँ, वह ठीक है या

ग़लत ! तुम चुप रहो ।"

"चुप रहूँ ?" अमल भी आवेश में था : "तुम्हें पतन के गर्त में गिरते देखता रहूँ, और तुम्हें उससे उबारने की कोशिश तक न करूं ? मैंने तुमसे मित्रता की है, और मैं उसे पूरी तरह निभाऊंगा। बोलो तुम वेश्या के यहाँ क्यों जाते हो ?"

विकल ने कुछ उत्तर न दिया। जलती आँखों से अमल की ओर देखता रहा, बस। अमल को लगा, विकल को और ठोकरें लगानी पड़ेंगी, तभी वह उत्तेजित होकर कुछ कहेगा। उसने कहा : "मुझे आश्चर्य है कि तुम उसके मोह में पड़ कैसे गये ? क्या तुम्हारे मस्तिष्क ने, जिस पर तुम्हें इतना गर्व है, काम करना बन्द कर दिया है ? या वह मायाविनी तुम्हारी 'प्रेरणा' बन गई है ?" प्रेरणा शब्द पर अमल ने ज़ोर देकर व्यंग किया।

"नहीं !" विकल के मुख से निकला : "वह मेरी प्रेरणा नहीं है, मुझे उसके प्रति सहानूभूति है।"

अमल के अधरों पर व्यंगात्मक मुस्कान बिखर पड़ी : "क्यों भला ?"

"क्योंकि वह पीड़ित है।"

"और भी कुछ ?"

"क्योंकि...क्योंकि..." विकल कहने जा रहा था, क्योंकि उसके कारण ही उसे एक महान कलाकार का बेला मिला है, परन्तु सहसा रुक गया। उसे याद आया कि बेला के बारे में कभी कोई नहीं जानेगा। उसने कहा : "क्योंकि उसे अपने शरीर का व्यापार करना पड़ता है।"

अमल के होठों और आँखों पर तैरता व्यंग और तीखा हो उठा। ज़रा मुस्कराकर उसने कहा : "तब तो तुम्हें सभी वेश्याओं के प्रति सहानुभूति होगी और तुम सभी के यहाँ जाते होगे।"

अमल का व्यंग बहुत तीखा था, और विकल उसे सह न सका। चीख़ कर बोला : "अमल, तुम चले जाओ कमरे से बाहर। मैं तुमसे बात नहीं करना चाहता।"

अमल हँसा : "पर मैं तुमसे बात करना चाहता हूं, और जब अपनी पूरी बात कह चुकूंगा, तभी यहाँ से जाऊंगा।"

अमल का स्वर दृढ़ था। विकल ने एक गम्भीर निश्वास लिया।

दुबारा अमल जब बोला, तो उसके स्वर में तनिक भी उत्तेजना, क्रोध, व्यंग न थे, वरन उसमें स्नेह और अनुरोध था। उसने कहा : "विकल, वहां जाना बन्द कर दो।"

उसके आग्रहपूर्ण स्वर ने विकल को चौंका दिया। उसने अमल को देखा और जब उत्तर दिया, तो उसका स्वर भी कोमल हो गया था। उसने कहा: "लेकिन क्यों?"

अमल को लगा जैसे उसकी कोशिश सफल होगी। उसने अपने स्वर को और अधिक कोमल बनाकर कहा : "शैल जी के लिए।"

विकल मौन रहकर अमल को देखता रहा।

अमल ने कहा: "तुमने इधर कब से उन्हें नहीं देखा?"

"तीन महीने से।"

"तुम्हारे कारण इस बीच में उनकी जो दशा हो गई है, उसका तुम अनुमान भी नहीं लगा सकते। अब उन्हें देखो तो शायद पहिचान भी न पाओ।"

अमल का वाक्य समाप्त हो ही पाया था कि विकल बोला : "तुम्हारे पास पत्र आया है उनका?"

अमल को लगा विकल के स्वर में गम्भीरता के अतिरिक्त कुछ और भी है, और वह 'कुछ' जैसे अमल से कह रहा हो, 'शैल जी की वकालत करने वाले तुम कौन होते हो?' उसे विकल का स्वर बड़ा अवास्तविक मालूम पड़ा। उसने कहा : "काका गये थे न कानपुर अभी। उन्होंने ही मुझे बताया है।" उसने अपने स्वर को संयत रखा जैसे विकल के गम्भीर स्वर में निहित उस 'कुछ' को वह न समझ पाया हो।

"हूँ!" विकल के मुख से निकला, क्षणिक निस्तब्धता के पश्चात्

उसने फिर कहा : "पर शैल ने मुझे कभी कुछ नहीं लिखा। उसके पत्र तो आते ही रहते हैं।"

"शायद इसलिए नहीं लिखा होगा कि तुम क्यों चिन्ता में पड़ जाओ।"

विकल बहुत गम्भीर हो गया था और बहुत शांत। अमल को आश्चर्य हो रहा था, कि कुछ देर पहले का उत्तेजित, क्रोधित विकल इतना शांत कैसे हो गया। विकल ने कहा : "मैं अभी काका को कानपुर भेजता हूँ। वह जाकर दीदी और शैल दोनों को यहां लिवा लायें।"

अमल को लगा, उसे अपनी कोशिश में सफलता मिल गई। उसने कहा : "विकल, ज़रा सोचो तो, क्या यह उचित है कि तुम एक साधारण वेश्या के लिये अपनी पत्नी को इतना कष्ट दो? वेश्या का क्या, आज तुमसे नाटक करती है, कल किसी दूसरे से करने लगेगी।"

"अमल, तुमने मुझे बिल्कुल ग़लत समझा है," विकल ने उत्तर दिया : "मैं वह नहीं हूँ, जिसकी तुम कल्पना कर बैठे हो। मैं..."

"यही तो मैं भी चाहता हूँ, विकल, कि तुम सिद्ध कर दो कि तुम वह नहीं हो, जो मैं समझ बैठा हूँ," अमल ने उसे बीच में रोक कर कहा : "पर सिद्ध कर दो, तब न?"

विकल मौन रहा।

"विकल, बोलो, उस वारांगना के यहां नहीं जाओगे न?" अमल के स्वर में बहुत अनुरोध था।

विकल मौन रहा। कैसे कह दे वह संध्या के यहां नहीं जायेगा? लेकिन यह दुनिया भी किसी बात के कितने ग़लत अर्थ लगा लेती है, उसने सोचा, किसी वेश्या के यहां जाने का केवल एक अर्थ होता है, उस की दृष्टि में! उसे याद आया संध्या ने एक बार कहा था, "दुनियां तो मुझे नीच कहती है, शरीर का व्यापार करने वाली वेश्या मात्र। ...आप यहां आयेंगे तो आप भी बदनाम हो जायेंगे। आपका पारिवारिक जीवन

अशान्तिमय हो उठेगा। और विकल बाबू, मैं नहीं चाहती कि ऐसा कुछ हो।...” क्यों सोचती है भला दुनियां इस तरह ?...विचारों में ही इतना खो गया वह कि अमल के प्रश्न का उत्तर देने की सुधि न रही। आखिर अमल ने ही फिर कहा : “तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, विकल ?”

“सोचता हूँ,” विकल ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया : “कि दुनियां की अक्ल को पाला मार गया है।”

अमल स्तब्ध रह गया। विकल के मुख से यह उत्तर सुनने की उसे बिल्कुल आशा न थी। उसने कहा: “क्या मतलब ?”

विकल हंसा : “मतलब मेरा बिल्कुल साफ़ है।” रुका और फिर बोला : “मैं संध्या के यहां नहीं जाऊंगा।...पर अमल, मैंने तुम्हें दुनियां से कुछ अलग समझा था। अब देखता हूँ वह बिल्कुल ग़लत था। तुम भी उसी में से एक हो। जो कुछ भी हो, मैं अब उसके यहां नहीं जाऊंगा।”

अमल ने उत्तर दिया : “ग़लती मनुष्य से ही होती है। हो सकता है, मैं तुम्हें सही नहीं समझ सका। पर इसमें मेरा कोई दोष नहीं। तुमने अपने चारों ओर जाल ही ऐसा बुन लिया है। और फिर विकल, एक महान सिद्धांत है, अनेक के सुख के लिये एक के सुख का बलिदान कर दिया जाता है।”

उत्तर में विकल धीरे से मुस्कराया, बस।
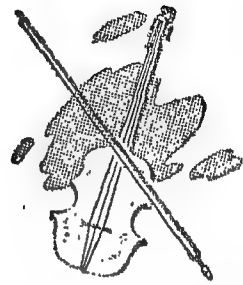
"तुम इतने दिन क्यो नहीं आये, राजीव? तुम इतने दिन कहां रहे?"

राजीव मुस्कराया : "और जो मैं भी यही सवाल तुमसे पूछूं तो?"

ठीक ही तो कहता है राजीव, विकल ने सोचा, वह इधर हफ्तों से यमुना किनारे आया ही कब था? लगभग तीन माह पहले वह पहली बार राजीव से उस जगह पर मिला था। उसके बाद कानपुर से दीदी आ गईं, और आ गई शैल; और उसे अपने समीप पाकर उसके हृदय में एक बार फिर नये सिरे से रोमांस जागा। वह बेला बजाता और शैल बांसुरी। दोनों राग में डूब जाते, खो जाते, घुल जाते। बीच में एक बार राजीव की स्मृति ने बहुत सताया तो वह दोपहर में ही बेला लेकर वहां पहुँच गया—यमुना किनारे, मिन्टो पार्क के सामने वाले घाट में। कई घंटे तक दोनों बातें करते रहे थे, एक दूसरे को उपालम्भों से बोझिल करते रहे थे, और संगीत में भी डूब-डूब गये थे। फिर वह राजीव का साथ छोड़ कर घर पहुँचा था, और शैल में उलझ गया था। कभी-कभी संध्या की याद आती, तो बरबस उसे वह अपने मन से निकाल देता क्योंकि उसे शैल को दिया हुआ वचन याद था और उसने निश्चय कर

लिया था कि वह अपने किसी काम से उसे तकलीफ नहीं देगा, कभी रात में घर से बाहर नहीं निकलेगा।

और तीन माह तक सफलतापूर्वक उसने अपना प्रण निभाया था। शैल के मुख पर अब कभी उदासी, विषाद की छाया न दिखलाई पड़ती थी। उसका पतझर के सूखे पत्ते सा पीला हो गया, मुख अब फिर गुलाब की पंखड़ियों के समान अरुणाभ हो उठा। यह देख कर उसके मानस में शैल के प्रति प्रेम और बढ़ता जा रहा था, क्योंकि राजीव द्वारा उसके मस्तिष्क में बैठा दी गई विचार धारा—कि नारी छलना है, प्रवंचना है, और है पुरुष की सम्पूर्ण शक्ति हरण कर लेने वाली दानवी—धीरे-धीरे उसके मस्तिष्क पर से अपना अधिकार हटाती जा रही थी, और उसका पहले का विश्वास—कि नारी मां है, अन्नपूर्णा है, देवी है फिर से दृढ़ होने लगा था; और सो भी केवल शैल के कारण!

पर संध्या को वह पूरी तरह भुला भी नहीं पाया। बहुधा उसके छलछलाये नयन उसके समक्ष नाच उठते, आंसुओं से गीला मुखमंडल उसे व्यथित कर देता, उसके शब्दों की प्रतिध्वनि उसके कानों में होने लगती। "दुनिया तो मुझे नीच कहती है, शरीर का व्यापार करने वाली वेश्या-मात्र।...आप यहाँ आयेंगे तो आप भी बदनाम हो जायेंगे। आपका पारिवारिक जीवन अशान्तिमय हो उठेगा।...अपने स्वार्थ के लिए मैं आपका जीवन नहीं नष्ट करूंगी, विकल बाबू...!" वह व्यथित हो उठता। मन में आता, उड़कर संध्या के समीप पहुँच जाये और उसकी व्यथा में भाग ले। व्याकुल हो उठता। तब शैल की याद आती। अपनी उपेक्षा से पीला पड़ गया उसका मुख याद आता और संध्या के समीप जाने का उसका विचार कपूर के समान उड़ जाता। व्यथा होती, पर मौन रह कर उसे पी जाता। कभी बहुत परेशान हो उठता तो सोचता, अगर उसके जीवन में शैल और संध्या दोनों में से कोई न आई होतीं तो वह कितना सुखी होता! कभी उसे स्वयं पर बड़ी झुंझलाहट

होती। वह सोचता, कितने दम्भ से उसने संध्या से कहा था कि वह दुनियाँ की परवाह नहीं करता; जब कि वह इतना शक्तिहीन, इतना निर्बल है कि उसके विरुद्ध कुछ कर-कह नहीं सकता। संध्या ठीक ही कहती थी, वह सोचता, न चाहते हुए भी मनुष्य को दुनियाँ के सामने झुकना ही पड़ता है।

और इसी तरह बीत गये तीन महीने। संध्या की याद बार बार आने पर भी वह उसके यहाँ जाने का साहस न कर सका।

"क्या सोच रहे हो?" राजीव ने उसके कंधे पर हाथ रक्खा: "मेरी बात का जवाब?"

"नहीं।" विकल ने कहा: "सोच रहा हूँ यह समस्या कैसे हल हो?"

"कौन सी समस्या?"

"धीरे-धीरे सभी को पता चल गया था कि मैं किसी वेश्या के यहाँ जाता हूँ। यह जानकर शैल के जीवन की बाती राख होने लगी थी। वह यहाँ आई तो उसे देखकर मुझे स्वयं पर बड़ी ग्लानि हुई। मैंने उससे वादा किया कि अब मैं कभी वहाँ नहीं जाऊंगा। इन तीन महीने अपने वादे पर मैं दृढ़ रहा, उसके यहां एक बार भी नहीं गया—उसका नौकर कई बार बुलाने आया, फिर भी मैं नहीं गया। परन्तु राजीव, अब संध्या की स्मृति इतनी तेज़ और पीड़ादायिनी हो उठी है कि मुझे लगता है मेरा उसके यहां जाना ज़रूरी है। अनेक बार मैं उसका विषादमय, आभाहीन मुखमंडल अपनी आंखों के सामने आँसुओं से भीगा हुआ देख चुका हूँ; अनेक बार उसके अधर मुझसे कुछ कहने को फड़फड़ाये हैं परन्तु कह वह कुछ नहीं सकी है; अनेक बार उसने अधिक लालायित दृष्टि से बेला को देखा है जैसे आग्रह कर रही हो, 'एक बार—अन्तिम बार—वह गत और बजा दीजिये'। राजीव, मैं उसके यहां उसके पास जाना चाहता हूँ, पर शैल का ध्यान आते ही मन में द्वन्द्व छिड़ जाता है।

बताओ न, मैं क्या करूं ?"

कुछ क्षण राजीव तीक्ष्ण, बेध देने वाली दृष्टि से विकल को देखता रहा, तब गम्भीर स्वर में बोला : "विकल, मैं तुमसे कितनी बार कह चुका हूँ, कि नारी छलना है !"

"नहीं, राजीव," विकल ने उत्तर दिया : "मुझे दुःख है कि तुम नारी को पढ़ नहीं पाये हो। नारी वह कुछ भी नहीं है जो तुम समझते हो।"

"फिर क्या है वह ?" राजीव के स्वर में हलका-सा व्यंग था।

"आशा, विश्वास, प्रेरणा, और जीवनदायिनी शक्ति।"

राजीव हंसा : "शब्द बड़े अच्छे हैं !"

विकल सहसा स्वयं को अपमानित-सा प्रतीत कर राजीव की ओर देखता रह गया, बस।

"विकल, तुम्हारे सामने एक लक्ष्य है।" राजीव फिर बोला, तो उसका स्वर अत्यधिक गम्भीर हो गया था : "और तुम्हें उसे प्राप्त करना है। पर मैं देख रहा हूँ, इधर तुम कुछ नहीं कर रहे हो।...नहीं, बीच में कुछ मत कहो, पहले मुझे अपनी बात कह लेने दो। इन दिनों तुम साधना नहीं कर रहे हो। तुम्हारा मन-मस्तिष्क कभी शैल के चारों ओर मंडराता है, कभी सध्या के आस-पास। कभी तुम शैल की उपस्थिति में खो जाते हो, कभी संध्या की स्मृति में। कभी तुम शैल को दुःखी न देखने की प्रतिज्ञा करते हो, कभी संध्या का विषाद दूर करने का विचार करते हो। कहने का मतलब यह है कि तुम्हारे मन-मस्तिष्क में कभी शैल रहती है, कभी संध्या। तुम एकाग्र होकर साधना कर ही नहीं सकते। तुम बेला बजा लेते हो, परन्तु क्या तुमने कभी सोचा है कि तुमने इन तीन महीनों में कितनी प्रगति की है। मुझसे पूछो, मैं जानता हूँ। तुमने तनिक भी प्रगति नहीं की। मुझे क्षमा करना कि मैं इतनी स्पष्टतापूर्वक यह सब कह रहा हूँ ; परन्तु मैं क्या करूं, तुम्हें भटकते देखता हूँ, तो मुझे कष्ट

होता है। पिछली बार जब हम मिले थे, तब भी मैं तुमसे यही कहना चाहता था, परन्तु कह नहीं पाया। आज प्रसंग आ गया, तो कह रहा हूँ। तो विकल, दो नारियों के कारण तुम्हारी साधना खंड-खंड होने जा रही है, फिर भी तुम उन्हें आशा, प्रेरणा, न मालूम क्या-क्या कहते हो। समझ में नहीं आता, तुम क्यों नहीं सोचते, क्यों नहीं संसार को पढ़ने का प्रयत्न करते।"

राजीव ने बोलना बन्द किया, तो विकल को लगा, सचमुच यदि उसका कोई सच्चा सहायक, प्रेरक है तो राजीव है, और सब तो उसे उसके लक्ष्य पहुँचने ही नहीं देना चाहते। वह व्यथित स्वर में बोला : "फिर मैं क्या करूं?"

"सतत साधना।"

राजीव का स्वर सुनकर उसमें एक बार फिर आत्मविश्वास जागा। उसे अनुभव हुआ कि वह वास्तव में सतत साधना कर सकेगा। उसने पूछा : "और शैल?"

"शैल नारी है, तुम्हारी पत्नी है, तुम्हारी कला नहीं। उसका उतना ही महत्व होना चाहिये।"

विकल की आंखें राजीव की आंखों से मिलीं। उसने पूछा : "और संध्या?"

"वह भी नारी है, और है रंडी।..." बड़ी वीभत्सता से उसने इस शब्द का उच्चारण किया।

"पर वह दुखी है।" विकल ने कहा।

"किसने कब किसके दुःख में योग दिया है, विकल," गम्भीर स्वर में राजीव ने कहा : "तुम्हीं साधना न करके मुझे कितना दुःख देते हो, सोचा है कभी, और कब उसमें हाथ बटाया है?"

विकल निरुत्तर हो गया।

"सुख के साथी अनेक होते हैं, परन्तु पीड़ा का भार व्यक्ति को

अकेले ही ढोना पड़ता है।" राजीव ने ही फिर कहा : "उसकी पीड़ा का विचार अपने के मन से निकाल दो। उसे भी अकेले ही ढोना होगा।... और फिर रंडी की पीड़ा ?" राजीव के होंठों के कोनों पर एक कुटिल मुस्कान आ गई।

विकल ने इस विषय में कुछ कहना ठीक न समझा क्योंकि उसे मालूम था कि राजीव अपने विश्वास के अलावा किसी और बात को मानेगा ही नहीं। तनिक देर बाद बोला : "अच्छा, एक बात बताओ।"

"क्या ?"

"मैं सतत साधना में व्यस्त रहूँ, तो शैल के मेरे समीप रहने से कोई हानि तो नहीं ?"

"बिल्कुल नहीं।"

"और कभी कभी संध्या के यहाँ भी हो आया करूं तो ?"

"कोई नुकसान नहीं।" तनिक रुक कर फिर राजीव ने कहा : "पर तब क्या शैल को दुःख नहीं होगा ?"

विकल के माथे पर लकीरें पड़ गईं। बोला : "यही तो मैं भी सोच रहा हूँ।..."

संध्या के कोठे की पहली सीढ़ी पर विकल ने पैर रखा। पत्थर पर पैर पड़ने पर भी उसका 'क्रीप-सोल' का जूता बजा नहीं, लेकिन उस के मस्तिष्क में बज उठा : "नहीं, यह शैल के प्रति अन्याय है। उसे ऊपर नहीं जाना चाहिए।"

वह रुक गया। पैर आगे बढ़ाने के लिए उठा, परन्तु यह विचार मस्तिष्क में आते ही फिर स्थिर होकर रह गया। उसने अपनी कलाई-घड़ी पर दृष्टि डाली। सात बज कर पन्द्रह मिनट हुए थे। नहीं, वह शैल को दुःखी नहीं करेगा, वह ज़रूर दस बजे तक वापस लौट जायगा। शैल को पता भी नहीं चलने पायेगा कि वह यहाँ आया था। बाँया पैर उठकर दूसरी सीढ़ी पर पड़ा। उसके कान में जैसे किसी ने बहुत धीमे स्वर में कहा, 'और अगर किसी तरह शैल को पता लग गया तो?' वह थम गया। एक क्षण पश्चात् उसके मन ने उत्तर दिया, 'कैसे लग जायगा पता? वह दस बजे तक घर जो वापस पहुँच जायगा!' एक सीढ़ी और ऊपर चढ़ गया। रुका और तब स्वयं को समझाकर जल्दी-जल्दी चढ़ कर ऊपर पहुँच गया—जल्दी-जल्दी इसलिये कि शायद शैल की स्मृति अधिक

बलवती हो उठे और उसे चुपचाप नीचे ही उतर जाना पड़े।

कमरे में सभी साज रक्खे हुए थे और पानी की सुराही और पानदान यथास्थान थे, पर कोई और न था। वह जल्दी आ गया, उसने सोचा। एक क्षण खड़ा सोचता रहा कि उसे क्या करना चाहिए। तब आगे बढ़ कर अन्दर वाले द्वार की जजीर खड़खड़ाई। फ़ौरन ही एक दासी बाहर आई। विकल को देखकर बोली : "तशरीफ़ रखिये, हजूर!"

तकिये के सहारे बैठते हुए उसने कहा : "कहो विकल आये हैं।"

"बहुत अच्छा, सरकार!"

वह अन्दर चली गई और दूसरे ही मिनट संध्या दौड़ती हुई आई और उसके सामने खड़ी होकर हांफते हुए बोली : "आप आ गये, विकल बाबू! मुझे लगा था आज आप आयेंगे।"

विकल हौले से मुस्कराया। संध्या उसके सामने बैठ गई।

"आज चार माह बाद आप आये हैं।" संध्या ने कहा : "कैसे बताऊं, मुझे कितनी खुशी महसूस हो रही है।" वह प्रसन्नता के आवेश में तनिक थमी, तब बोली : "पर मेरे बार-बार बुलाने पर भी आप इतने दिन क्यों नहीं आये, विकल बाबू, क्या आपके हृदय में मेरे प्रति तनिक भी सहानुभूति नहीं रह गई?"

वह सहसा रुक गई। कुछ क्षणों बाद बोली : "पर यह पूछने का अधिकार मुझे नहीं है।"

वह मौन हो गई। खुशी गायब हो गयी। विषाद घहर उठा।

"हाँ, संध्या जी, मैं आपके बार-बार बुलाने पर भी नहीं आया।" विकल ने गंभीर स्वर में कहा : "नहीं आया, क्योंकि मैं स्वयं को इतना ताक़तवर अनुभव नहीं करता था कि दुनिया की इच्छा के विरुद्ध काम कर सकूँ। सब को बुरा लगा कि मैं आपके यहाँ आता था। क्यों आता था, इससे किसी को प्रयोजन न था। इसीलिए निर्बल मैं अब तक न आ सका।"

संध्या मौन रही।

विकल एक क्षण रुकने के बाद कहता गया : "आप को याद होगा एक बार आपने कहा था कि मैं दुनियां को नहीं समझता, और यह भी नहीं समझता कि न चाहते हुए भी हमें उसकी इच्छा के सामने झुक जाना पड़ता है। तब मैंने आपकी बात नहीं मानी थी, पर अब सोचता हूँ तो पाता हूँ कि मैं ग़लती पर था और आप सही कहती थीं। दीदी ने समझाया, शैल ने आंसू बहाये, अमल ने खरीखोटी सुनाई और मैं उनकी ओर बह गया। मैंने शैल से वादा किया कि अब कभी आपके यहां नहीं आऊंगा—मैं ही जानता हूँ, वादा करके कितना मासिक क्लेश मैंने झेला है। मुझे आपकी याद आया करती। हर बार जब आपका आदमी लौट जाता मैं तड़प उठता। लगता ये सारे बन्धन तोड़ दूं और बिल्कुल उन्मुक्त हो जाऊं। और चार महीने बीत गए।"

मौन संध्या एकटक विकल की ओर देख रही थी।

"चार माह तक लगातार मेरे मन में भीषण संघर्ष होता रहा और उसकी आंच में मैं तपता रहा। आख़िर आज मुझे अनुभव हुआ कि आप के यहाँ मुझे जाना ही चाहिए। और मैं..."

विकल ने बोलना बन्द कर दिया और संध्या तो चुप थी ही। कुछ क्षण यों ही निस्तब्धता में सरक गये।

संध्या ही बोली : "आजकल आप अकेले हैं?"

"नहीं, शैल है और काका हैं। दीदी कानपुर में हैं।"

संध्या ने एक गम्भीर निश्वास खींचा। कहा : "आपका मेरे यहाँ न आना ही उचित है। एक बार आपके परिवार में असन्तोष की चिनगारी लग चुकी है, पर वह सुलग कर लपटों का रूप नहीं ले सकी। आप यहाँ आयेंगे, तो इस बार वह भीषण अग्नि का रूप धारण कर लेगी और उस में (ईश्वर न करे ऐसा हो) आपका सुख-सन्तोष सब जल जायगा।"

"मैं किसी बन्धन में नहीं बंधना चाहता," विकल लगभग चीख

पड़ा।

संध्या ने विकल के उद्गार की ओर जैसे ध्यान ही नहीं दिया, वह कहती गई : "आप नहीं आये थे और व्याकुल होकर मैंने आपके पास कई बार अपना आदमी भेजा था, क्योंकि आपका बेला सुनकर मेरे अशान्त मन को थोड़ी शान्ति मिलती है, क्योंकि कुछ समय के लिये मैं भूल जाती हूँ कि मैं हत्या की अपराधिनी हूँ। पर मैं विश्वास दिलाती हूँ कि अब कभी आपको नहीं बुलवाऊंगी। आप यहाँ न आया करें। जब आप नहीं मिले थे, तब मैं अकेले ही तो सारी पीड़ा सहती थी, अब भी वही करूंगी। आप से मेरी प्रार्थना है कि आप यहां न आया करें।"

उसके नयन पिघले, बहने को हो आये, पर कोशिश करके उसने उन्हें वहीं रोक लिया।

विकल बोला : "आप मुझे न बुलायें, पर मैं तो आया ही करूंगा।"

"नहीं, आप ऐसा नहीं करेंगे।"

"मैं ज़रूर आपके यहाँ आऊंगा। मुझे क्षोभ है कि इन पिछले दिनों में क्यों नहीं आया ?"

संध्या का रुद्ध कंठ स्वर बोला : "वादा कीजिये, आप यहाँ नहीं आयेंगे।"

विकल अब तक स्वयं पर अधिकार पा गया था। मुस्कराकर बोला : "मुझे दुःख है कि आज मैं बेला नहीं लाया हूँ।"

संध्या ने उसकी ओर देखा। विकल सौम्य भाव से मुस्करा रहा था।

उस रात शैल नहीं जान सकी कि विकल शाम को संध्या के यहाँ गया था। वह बहुत खुश थी।
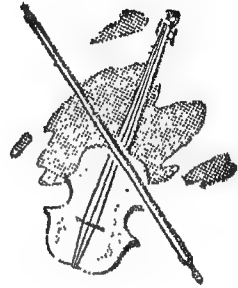
दो मास और बीत गये।

चार महीनों तक वह संध्या के यहाँ एक बार भी न गया था। परन्तु जब एक बार चला गया, तो अपने पर अधिकार रखना उसे बहुत कठिन मालूम पड़ने लगा। संध्या ने अपने वादे के अनुसार कभी उसे बुलाने को आदमी नहीं भेजा, परन्तु चार-छः दिन, अधिक से अधिक एक सप्ताह बीतते-बीतते वह स्वयं संध्या के यहाँ जा पहुँचता। दुनियाँ की दृष्टि में वह केवल एक वेश्या थी, रंडी, जिसे नारी कहलाने का अधिकार भी प्राप्त नहीं— परन्तु विकल कभी भी उसे पीड़िता नारी के अलावा और कुछ न मान सका। अनेक बार उसने विकल को अपनी और राजीव आनन्द की प्रणयगाथा सुनाई और सुना-सुना कर आठ-आठ आँसू रोई। अनेक बार उसने कहा कि वह राजीव की हत्यारिणी है। अनेक बार विकल ने उसे सान्त्वना दी, और अनेक बार वेला के तारों ने जयजयवन्ती प्रवाहित कर उसके सन्तप्त हृदय पर मरहम लगाया। चार माह में एक बार भी उसने संध्या को न देखा था, परन्तु इन दो महीनों में कम से कम दस बार गया।

दो महीनों में राजीव भी उससे कई बार मिला। सदा के समान जब भी राजीव उसके सामने आता, उसका मुखमंडल बालरवि के समान प्रसन्नता से खिल उठता। परन्तु वह लक्ष्य करता उसे देखकर राजीव अब उतना प्रसन्न नहीं होता, जितना पहले हुआ करता था। वह कुछ कहता तो उसका उत्तर राजीव कम से कम शब्दों में दे देता, वह कुछ पूछता तो उसका उत्तर 'हाँ' या 'ना' में हुआ करता। एक-दो मुलाकातों में तो विकल को यह भान न हुआ परन्तु जब उसे यह विश्वास हो गया कि यही होता है, तो वह बहुत व्यथित हुआ। उसने क्या अपराध किया, जो राजीव उससे इतना अलग-अलग रहता है? जब यह प्रश्न उसके मस्तिष्क को इतना परेशान किये रहने लगा कि वह और कुछ करने-सोचने में असमर्थ हो गया, तो उसने पूछ ही लिया: "राजीव, आजकल तुम मुझसे कुछ नाराज़ हो क्या?"

"नहीं तो!" राजीव ने उत्तर दिया। परन्तु विकल को स्पष्ट मालूम हुआ कि उसके स्वर का 'टोन' कह रहा है, 'हाँ'।

"फिर पहले की तरह हंसते क्यों नहीं? मुझे कुछ बताते क्यों नहीं? बोलते क्यों नहीं? बेला बजाने के लिये आग्रह क्यों नहीं करते?..." कहते-कहते विकल का स्वर भारी हो उठा।

राजीव ने गंभीर श्वास ली। धीरे-धीरे, एक-एक शब्द पर रुकता हुआ बोला: "मैं तुम से बेला बजाने के लिये आग्रह क्यों नहीं करता? कारण जानना चाहते हो?"

"हाँ।"

"तो साफ़-साफ़ सुनो। तुम्हारी कला ने इधर तनिक भी प्रगति नहीं की। कलाकार ऊँचे नहीं उठता, तो मुझे दुःख होता है।"

विकल ने महसूस किया राजीव को सचमुच उसके कारण मानसिक क्लेश है। उसे स्वयं पर बहुत क्रोध आया, कि क्यों वह अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को कष्ट ही देता है, कभी किसी को सुख भी

दिया होता! लज्जा से उसका सिर झुक गया। फिर स्वयं को संतुलित करके उसने कहा: "पर मैं सदा अभ्यास करता रहा हूँ, राजीव!"

राजीव व्यंग से हंसा: "बधाइयाँ!"

केवल एक ही शब्द! बिच्छू के डंक-सा एक शब्द! विकल तिलमिला कर रह गया।

तनिक देर पश्चात् राजीव ने गंभीर स्वर में कहा: "विकल, तुमने कभी एक बात पर ग़ौर किया है?"

"क्या?"

ज़रा ठहर कर राजीव ने कहा: "छः माह से लगातार बेला बजाने पर भी तुमने प्रगति नहीं की। क्या कभी यह सोचा है कि क्यों ऐसा हुआ है?"

विकल ने सिर हिलाया: "मुझे तो यह पता नहीं था कि मेरी कला स्थिर होकर रह गई है।"

"क्यों नहीं पता था?"

"कह नहीं सकता।"

राजीव हंसा: "तुम कभी भी नहीं कह सकोगे। मैं बताऊं?"

"हाँ।"

एक क्षण को रुककर उसने तीक्ष्ण कटाक्ष किया: "माँ, अन्नपूर्णा, देवी ने तुम परमहती कृपा की है। अब तुम जीवन भर कुछ नहीं कर पाओगे।"

विकल व्यंग सहन न कर सका, चीखा: "राजीव!"

"हाँ, विकल, तुम्हें बुरा लगा क्या?" राजीव का स्वर गंभीर और शान्त था: "सत्य कटु होता है। तुम्हें अब अपनी महत्वाकांक्षा को भूल कर साधारण व्यक्ति के समान जीवन व्यतीत करना चाहिये।"

"राजीव!" विकल फिर चीखा। उसके स्वर में उत्तेजना थी और टीस भी।

"हाँ, विकल!" राजीव ने कहा: "अपना बेला तुम्हें नष्ट कर

देना चाहिये और संध्या का बेला उसे वापस कर आना चाहिये। तुम्हारे भीतर का कलाकार अब नारी का दास होकर मृत हो चुका है।...''

''ऐसा न कहो, राजीव!'' विकल के स्वर में करुणा घुल गई थी: ''ऐसा न कहो। मेरा कलाकार मरा नहीं, राजीव, मेरा कलाकार अभी मरा नहीं।''

राजीव मुस्कराया: ''तो मृतप्राय होगा।''

विकल की आँखें छलक उठीं। बेला के लिये ही उसने डॉक्टरेट छोड़ी थी। बेला के लिये ही यह बदनाम हुआ था। अब उसका कलाकार भी मरने वाला है? उसने कुछ कहना चाह पर होठ काँपकर रह गये।

''तुमने ठीक कहा था, विकल,'' राजीव ने ही फिर कहा: ''तुम्हारा निश्चय हिमालय की तरह होगा, पिघल-पिघल कर बहेगा।''

विकल यह एक और व्यंग सहन न कर सका। छटपटा कर बोला: ''मुझे क्षमा कर दो, राजीव मुझे क्षमा कर दो!...''

पर राजीव वहाँ न था। कई बार आँखें फाड़-फाड़ कर विकल ने घाट पर, सीढ़ियों पर, ऊपर, नीचे, हर ओर देखा, पर वह कहीं न दिखाई पड़ा।

एक लम्बी सांस खींचकर सीढ़ी पर बैठ गया। हाथ के बेला पर दृष्टि डाली। उसके लिये राजीव ने कहा था कि उसे संध्या के यहाँ लौटा आना चाहिये। नहीं...नहीं...उसने विकल होकर वाद्य यंत्र को चिपटा लिया। अब वह राजीव को शिकायत करने या दुःखी होने का अवसर न देगा। वह पहले के समान दिन रात अभ्यास करेगा। राग में डूब जाएगा। उसे अपने लक्ष्य तक पहुँचना ही है। हृदय में बल और विश्वास का अनुभव करता हुआ वह उठा और घर की ओर चल पड़ा।

इन्हीं दो महीनों में उसने अपने चारों ओर के वातावरण में एक

और परिवर्तन लक्ष्य किया। शैल अब भी पहले की तरह हँसती, मुस्कराती, बोलती, कभी-कभी साथ बाँसुरी बजाती, लेकिन न जाने क्यों विकल को लगता कि पहले की शैल और अब की शैल में बड़ा अन्तर है। क्यों? क्या सिर्फ़ विकल के कारण?...

शैल के मन में क्या है? यह जानने के लिए उसने कई बार शैल से पूछा भी कि 'तुम्हें क्या हो गया है, शैल?' लेकिन वह हर बार मुस्कराकर ही टाल गई : "कुछ नहीं! कुछ तो नहीं!"

कुछ नहीं! कुछ तो नहीं ...

तब क्यों विकल को ऐसा महसूस होता है, मानों सारी फ़िज़ाँ में उसके खिलाफ़ एक षड्यंत्र भरता जा रहा है? क्यों उसके वातावरण में ऐसी शान्ति व्याप्त हो गई है जो चिल्ला-चिल्ला कर कहती है : "कुछ होगा, कुछ होगा?"

घर के रास्ते पर राजीव का वह व्यंग कांटे की तरह कसकता रहा—"तुमने ठीक कहा था तुम्हारा निश्चय हिमालय की तरह होगा, पिघल पिघल कर बहेगा!"

निश्चय...हिमालय...बेला...जयजयवन्ती...ख़ामोश उदासी में भरी आसन्नप्रसवा निस्तब्धता...क्या प्रसव होगा?...क्या...

घर पहुँच कर बेला बाहर वाली आलमारी में बन्द किया और तब अन्दर प्रवेश किया।

शैल ड्राइंग रूम में सोफ़े पर बैटी थी और उसकी पीठ दरवाज़े की तरफ़ थी। हल्के पांवों चल कर वह सोफ़े के पीछे खड़ा हो गया।

शैल विकल का बेला गोद में रक्खे, मूक बैठी थी, आँखें अपलक उसे निहार रही थीं। एकाएक जैसे बड़ी कठोरता से उसने तारों पर हाथ फेरा : "दुनिया तुम्हें चाहती है और तुम्हारे स्वर को प्यार करती है। मैं भी तुम्हें चाहती हूँ। जानते हो क्यों? इसलिये कि तुम्हीं ने मुझे बताया है कि वे क्या हैं, मैं क्या हूँ, वे क्या चाहते हैं, मैं क्या चाहती हूँ! मैं

तुम्हारी आभारी हूँ !"

एक बार फिर तारों पर एक साथ हाथ फेरा तो वे झनझना उठे।

विकल उसी तरह कमरे से बाहर चला गया और कुछ देर बाद जब वापस आया तो शैल ने बेला मेज़ पर रख दिया था और जैसे किसी के ख़्याल में खो गई थी वह !

"शैल !"

"हाँ !"

विकल को आश्चर्य हुआ। शैल ने हमेशा की तरह 'जी' नहीं कहा था।

"क्या सोच रही थीं ?"

"कुछ तो नहीं।"

"बताना नहीं चाहतीं ?"

"हर चीज़ के जानने का एक समय होता है ?"

"और वह समय अभी नहीं आया ?"

"यही समझ लो।"

तनिक देर की ख़ामोशी के बाद विकल ने गंभीर स्वर में कहा : "अभी अभी बेला को लक्ष्य करके जो कुछ तुम कह रही थीं, शैल, वह सब मैंने सुन लिया है। क्या तुम मुझे बताओगी कि मैं-तुम क्या हैं और क्या चाहते हैं ?"

शैल व्यंग से मुस्कराई।

"तुम जानते नहीं ?"

'तुम' ? विकल ज़ोर से चौंक पड़ा। 'तुम'...

"जानना चाहता हूँ कि तुम क्या सोचती हो ?"

"तो जाकर उस कोठे वाली से पूछो न !" एकाएक उत्तेजित होकर शैल चीख़ पड़ी : "मेरे पास क्या रक्खा है ?"

"शैल !" चिल्ला पड़ा विकल।

"हाँ, हाँ, जाओ उसी कोठे में। उसी की गोद में तो तुम्हें आराम मिलता है न? जाओ वहीं।..."

"शैल!"

"मत लो मेरा नाम अपनी अपवित्र वाणी से। मत आओ मेरे पास। तुम...तुम..."

"शैल! शैल!" विकल ने कंधे पकड़ कर उसे झकझोर दिया: "तुम्हें क्या हो गया है, शैल? पहले मेरी बात तो सुनो। मेरा संध्या के साथ वैसा कोई नाता नहीं है जैसा तुम सोचती हो। ठीक है कि वह वेश्या है, सुन्दर है, और शरीर का व्यापार करती है पर मैं उसे इस रूप में नहीं देखता। वह दुखिया है, परिस्थितियों से जूझने में असमर्थ है। मुझे उसके साथ सहानुभूति है, मात्र सहानुभूति। उसके बारे में सुनोगी तो तुम स्वयं उससे घृणा नहीं कर सकोगी..."

शैल एकाएक जैसे अशक्त हो उठी। खामोश खड़ी रही। विकल ने उसी तरह उसके कंधे पकड़े-पकड़े ही संध्या और राजीव की कहानी कह सुनाई। तब चुप होकर देखने लगा कि शैल पर क्या प्रभाव पड़ा है। शैल कुछ क्षणों तक निर्विकार खड़ी रही, तब व्यंग से बोली: "यह कथा उसी ने खुद सुनाई थी न?"

विकल को एक झटका लगा। हाथ शैल के कंधे से हटा लिये। अत्यधिक अकुलाहट और क्रोध से कमरे में टहलने लगा। तनिक देर बाद अपने को संयत करके शैल की ओर अपलक देखता हुआ—जैसे अपनी आँखों द्वारा उसे छेद डालना चाहता हो—बोला: "तुम ईर्षा से विकृत हो गई हो, शैल।"

शैल खिलखिला कर हँस पड़ी।

विकल उसे देखता रह गया।...यह शैल तो वह नहीं है, जिससे उसने प्रेम और फिर विवाह किया था। न ही इस पर वह गर्व करता था और न इसे पाकर अपने को संसार का सबसे ज्यादा खुशनसीब समझता

था। वह शैल कोई और थी। अब वह शायद कभी वापस न आयेगी।...

अजब-सी बींधने वाली दृष्टि से शैल की ओर देखकर उसने कहा : "मैं सोचता था तुम मुझे पहचानती होगी।"

और कमरे से बाहर निकल गया।

शैल उस समय पत्थर के बुत की तरह खड़ी थी—निश्चल, निर्विकार।

तेज़ी से चलता हुआ विकल अभी एक फ़र्लांग ही पहुँचा होगा, कि सामने से आता हुआ अमल मिल गया। वह अपने में ही इतना डूबा था कि अगर अमल उसे न बुलाता तो शायद वह बिना देखे आगे निकल जाता।

अमल के बुलाने पर विकल बरबस मुस्कराया : "कहो, कहाँ जा रहे हो?"

"तुम्हारे ही यहाँ जा रहा था।" अमल ने उत्तर दिया : "कई बार गया पर तुम नहीं मिले, तो मैंने सोचा रात में तो मिलोगे ही।"

उसने हंसने की चेष्टा की परन्तु विकल का गम्भीर मुख देखकर चुप हो गया।

"कोई ख़ास काम था?"

"ख़ास ही समझो। तुमसे कुछ बातें करनी थीं।"

"ज़रूरी?"

अमल ने सिर हिलाया।

"तो आओ, मैं अल्फ्रेड पार्क की ओर जा रहा हूँ। रास्ते में बातें करते चलेंगे।"

दोनों मालवीय रोड से घूमकर कैनिंग रोड पर चलने लगे। यद्यपि अल्फ्रेड पार्क के लिये यह रास्ता कुछ लम्बा था—सी० वाई० चिन्तामणि

रोड सीधी वहीं पहुँचती थी, पर सीधे-टेढ़े रास्तों से विकल को क्या प्रयोजन था। घर में ही उसके लिये अब कौन-सा आकर्षण शेष रह गया था।

अमल ने ध्यान से विकल को देखा। बोला : "तबियत ठीक नहीं है क्या?"

"नहीं तो, तबियत बिल्कुल ठीक है।" विकल ने उत्तर दिया।

"फिर आज इस समय पार्क कैसे चल दिये?"

"यों ही। घर में मन नहीं लग रहा था।"

"क्यों? शैल जी से झगड़ा हो गया?"

तनिक रुक कर एक झटके से विकल ने कहा : "नहीं।"

"फिर ऐसे उखड़े-उखड़े से क्यों हो?"

" 'मूड' ही तो है।"

आंखों के कोनों से अमल ने विकल को देखा और बड़ी सावधानी से स्वर को कोमल बनाकर पूछा : "आजकल रहते कहाँ हो?"

विकल खीझा हुआ तो था ही, एक दम फूट पड़ा : "रंडी के यहाँ।"

"विकल!" अमल चीख़ पड़ा।

"क्यों, इसमें बुराई क्या है? जो काम दुनियां को पसन्द है, उसे वह करती हैं। जो काम मुझे पसन्द है, वह मैं करता हूँ। इसमें चीख़ने-चिल्लाने की कौन सी बात है?"

चार-छः क़दम दोनों मौन रहे। तब अमल बोला : "विकल!"

"कहो!"

"तुम उस वेश्या के यहाँ जाना बन्द कर दो।"

"क्यों?"

"क्योंकि...क्योंकि यह ठीक नहीं है..."

विकल मुस्कराया।

"क्यों ठीक नहीं है? इसलिये कि समाज इसे हेय समझता है?"

"नहीं, बल्कि इसलिए कि तुम्हारी अपनी कुछ ज़िम्मेदारियाँ हैं, जिन्हें निभाना तुम्हारा फ़र्ज़ है..."

"ज़िम्मेदारियाँ ?" विकल ज़ोर से हँस पड़ा। अप्राकृतिक हँसी, जो वातावरण में गूँज कर रह गई। "ताली दोनों हाथ से बजा करती है, अमल!"

अमल सहम गया। क्या विकल ही हँसा था ? फिर भी आग्रह जारी रखा : "कौन अपनी ज़िम्मेदारी से भागता है ?..."

विकल ने व्यंग किया : "मैं। सिर्फ़ मैं।" फिर ज़रा रुक कर बोला : "रूपहाट से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, लेकिन मैं संध्या के यहाँ जाना नहीं छोड़ सकता।"

"क्यों ?"

"यह मेरी अपनी बात है। मैं हर किसी को नहीं बताना चाहता। और जहाँ तक ज़िम्मेदारियों का सवाल है उन्हें शायद मैं तुम सबसे ज्यादा समझता हूँ।" ज़रा रुक कर कहता गया : "अगर यही तुम्हारी ज़रूरी बातें थीं तो मैं तुम से प्रार्थना करूंगा कि अब हम लोग कुछ और बातें करें।"

अमल ने एक गहरी सांस ली।

"तुम हम सब के साथ अन्याय कर रहे हो, विकल। हम सबके साथ जो तुम्हें प्यार करते हैं।"

"और प्यार करने वाले तो अन्याय करते ही नहीं शायद !" विकल व्यंग से हंसा।

अमल अप्रतिभ हो गया।

"अच्छा, दोस्त, मेरा ख़्याल है कि ये बातें हम खत्म करें क्योंकि ये हमें कहीं पहुँचाने वाली नहीं हैं। हैं न ?...अब तुम घर जाओ। मैं भी पार्क न जाकर वापस लौट जाऊंगा।"

वह लाउदर रोड़ पर मुड़ गया।

"विकल !" अमल ने कहा।

"अरे हां !" विकल मुड़कर उसके पास आया: "एक बहुत बड़ी बात तो भूला ही जा रहा था। आज अचानक पत्रिका आंखों के सामने पड़ गया था। देखा, इस दिसम्बर के कन्वोकेशन में तुम्हें डाक्टरेट की डिग्री मिलेगी।" वह हंसा: "बधाई, डाक्टर अमल ! सौ-सौ बधाइयाँ ! दावत कब खिला रहे हो ?"

"धन्यवाद।" अमल ने उत्तर दिया: "दावत तो जब कहो, खिला दूं। पर मैं कितना...चाहता था विकल, कि हम दोनों साथ-साथ डाक्टरेट लेते !"

विकल हंसा: "जो बीत गई, सो बात गई। शैल जी से मिल आना, तुम्हारी सफलता पर वह बड़ी प्रसन्न थीं ! अच्छा नमस्ते।"

बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये मुड़ कर विकल लाउदर रोड पर चल पड़ा। अमल चौराहे पर खड़ा उसे तब तक देखता रहा, जब तक वह सड़क के मोड़ के कारण आंखों से ओझल नहीं हो गया। खड़ा-खड़ा वह विकल के वाक्य 'शैल जी से मिल आना, तुम्हारी सफलता पर वे बड़ी प्रसन्न थीं' का अर्थ ही लगाने में व्यस्त था। यह सीधा-सरल वाक्य था, या अमल और शैल को मिला कर एक कटाक्ष ! यही सोचता हुआ वह पैदल ही वापस लौट पड़ा।

लाउदर रोड पर कुछ दूर पैदल चलने के बाद विकल को एक खाली रिक्शा आता दिखाई पड़ा। वह उस पर कूद कर बैठ गया और बोला: "चौक।"

लगभग बीस मिनट बाद वह संध्या के कोठे की सीढ़ियों पर था।
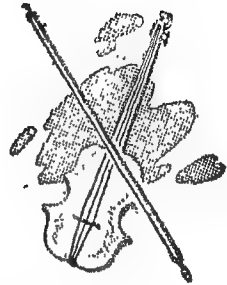
"राजीव !" विकल ने कहा : "मुझे बताओ, मैं क्या करूँ ?"

राजीव ने बहुत स्नेह से विकल को देखा। पिछली भेंट में जिस बेरुखी से वह विकल के साथ पेश आया था, उसका लेशमात्र भी इस समय उसमें न था। विकल के मुख की कान्ति बिल्कुल बुझी हुई थी, और आँखों में निस्सीम व्यथा थी। सिर्फ एक रात में ही वह दस वर्ष और बूढ़ा मालूम पड़ने लगा था।

"क्या बात है, पहले यह तो बताओ !" राजीव ने प्रेम और सहानुभूति पूर्ण स्वर में पूछा।

"मैं ऐसे जाल में फंस गया हूँ, जिससे निकलने की जितनी कोशिश करता हूँ, उतना ही उसमें उलझता जाता हूँ। और मेरा लक्ष्य..." वह रुका, गले में जैसे कुछ फंस गया, कोशिश करके बोला : "मृगजल के समान वह अप्राप्य ही होता जाता है।"

प्यार से राजीव ने उसके कंधे पर हाथ रखा। विकल को लगा यह धैर्योत्पादक हाथ सदा उसके कंधे पर रक्खा रहे। राजीव ने कहा : "किस जाल में फंस गए हो ?"

"शैल ने कभी साफ़-साफ़ मुझ से नहीं कहा, लेकिन वह मेरे बेला से घृणा करती है। मैं उसकी कल्पना के अनुरूप पति नहीं हूँ।"

राजीव ने गम्भीरतापूर्वक सिर हिलाया, जैसे सब कुछ समझ गया हो।

विकल ने शैल और अमल से हुई अपनी बातचीत सुनाई और कहा : "मुझे लगा, यह नारी जिसे मैं मूल्यवान् हीरा समझता था, कांच के साधारण टुकड़े के अलावा और कुछ नहीं है। और अमल...अमल... मुझे खुद पर क्रोध होता है कि मैं व्यक्तियों को क्यों नहीं परख पाता।"

राजीव चुप विकल को ओर देखता रहा।

"तब मैं संध्या के यहाँ पहुँचा," विकल ने आगे देखा : "उतनी रात में अपने यहाँ मुझे पाकर तो वह नहीं चौंकी पर मेरी अस्त-व्यस्त दशा देखकर ज़रूर चौंक पड़ी। बड़े प्रेम से हाथ पकड़ कर उसने मुझे बिठाया और मेरी परेशानी का कारण पूछा। मैंने शैल और अमल के साथ हुई सारी बातें उसे सच-सच बता दीं। सुनते-सुनते उसकी आँखों में आंसू भर आए और वह बोली, 'मैं कहती थी न, कि मेरे कारण आपकी पारिवारिक शान्ति में विघ्न पड़ जायगा।'

" 'नहीं', मैंने उत्तर दिया : तुम्हारे यहाँ आने का तो एक बहाना है, असल में बेला के प्रति मेरे अनुराग को वह घृणा करती है।'

"उसने कहा : 'नहीं' विकल बाबू, आप मेरे यहाँ आना छोड़ देंगे, तो आपकी पत्नी को किसी तरह की शिकायत न होगी। उनका आप से रूठे रहना ठीक भी है। मैं अगर उनकी जगह पर होती, तो मैं भी वही करती। एक स्त्री कभी सहन नहीं कर सकती, कि उसका पति कभी दूसरी स्त्री के पास जाये।...वादा कीजिये कि अब आप मेरे यहाँ कभी न आयेंगे।'

" 'एक बार यह भी करके देख चुका हूँ,' मैंने उत्तर दिया; 'पर सफल नहीं हुआ। तुम्हारे यहाँ आना मेरे लिए जैसे निहायत ज़रूरी है।'

"और यह सच है, राजीव, संध्या कुछ इस तरह मेरे मन-प्राण पर

छा गई है, कि ज्यादा दिन उसके यहाँ नहीं जाता तो व्याकुल हो उठता हूँ। मैं उसे वेश्या नहीं समझता, उसके रूप पाश में नहीं फंसा, उसे प्रेम नहीं करता, उसे पवित्र स्नेह और आदर की दृष्टि से देखता हूँ। और उसी संध्या ने जानते हो, क्या उत्तर दिया ? उसने कहा : 'विकल बाबू, अगर आप मेरे यहाँ आना बन्द न करेंगे, तो मैं ही आपके लिये यहाँ का द्वार बन्द करवा दूँगी।'

"राजीव, शैल को, जिसे जीवन में पहली और आखिरी बार मैंने प्रेम किया है, अब मुझ पर विश्वास नहीं रहा। संध्या मेरे साथ क्या बर्ताव करेगी, उसने स्पष्ट कर दिया है। ऐसी दशा में मैं रह कैसे पाऊँगा, राजीव ?"

विकल के कंधे पर रक्खा हुआ हाथ राजीव ने दबाया। तनिक मुस्कराया, बोला : "कैसे रह पाओगे ?"

"हाँ !"

"मुझे लगता है, अपना वादा तुम्हें याद नहीं रहा। तुमने प्रण किया था कि बेला ही तुम्हारा जीवन होगा। क्या उसके सहारे नहीं रह सकोगे ?"

विकल सोच में डूब गया।

राजीव कहता गया : "छः महीने पहले तुमने बेला पर कितनी अच्छी प्रगति की थी। लेकिन इधर छः महीनों से, तनिक सोचो तो, तुम कितना आगे बढ़े ? बिल्कुल नहीं। बल्कि मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि तुम पीछे ही हटे हो, आगे नहीं बढ़े। कभी सोचा है, क्यों ? सीधा सा कारण है—शैल के प्रेम और संध्या के आकर्षण में तुम अपना लक्ष्य भूल बैठे। तुम्हें दुःख है कि शैल अब तुम पर विश्वास नहीं करती और संध्या तुम्हारा सम्पर्क नहीं चाहती और तुम कहते हो कि उनके बिना तुम कैसे रह पाओगे ? पर विकल, विश्वास मानना, मुझे यह सोचकर दुःख होता है कि इतने दिनों में कभी एक बार भी तुमने नहीं कहा कि अपने लक्ष्य को

प्राप्त किये बिना तुम कैसे रहोगे। स्त्रियों के प्रति मेरे विचार क्या हैं, यह तुम भली-भांति जानते हो। फिर तुम्हीं बताओ, मैं तुम्हारे लिये कैसे कुछ कर सकता हूँ ?"

विकल ने राजीव की बात सुनी और समझी। बोला : "तो मैं किसके पास जाऊँ, राजीव, किससे कहूँ कि मुझे बताओ मैं क्या करूँ ?"

"पर मैं बता ही क्या सकता हूँ, विकल ?"

"सिर्फ़ तुम्हीं मेरी याद कर सकते हो।"

"अगर तुम शैल और संध्या के बिना नहीं रह सकते तो शैल को विश्वास दिलाओ कि संध्या के पास जाकर तुम बुरे नहीं बन जाते, और संध्या से कहो कि उसके यहाँ आने पर भी तुम्हारे परिवार में कलह नहीं होती, तब शायद तुम्हारी समस्या हल हो जाय।"

राजीव के स्वर में आत्मीयता न थी, वह बस यंत्र-चालित-सा बोले जा रहा था। विकल से यह छिपा न रह सका। बोला : "तुम भी मेरी उपेक्षा करोगे, यह मुझे मालूम न था, राजीव।"

"तब तुम्हीं बताओ, मैं क्या कहूँ ?"

दो-तीन क्षणों तक विकल राजीव को देखता रहा, तब बोला : "अगर तुम मेरी जगह पर होते, तो क्या करते ?"

राजीव ने ध्यान से विकल को देखा, तब मुस्कराकर बोला : "तुम भी वही करोगे ?"

"हाँ।"

"तो सुनो," राजीव ने विकल की आँखों से आँखें मिलाते हुए कहा : "मैं इन सब को ठीकरे की तरह ठुकराकर कर्म में रत हो जाता।"
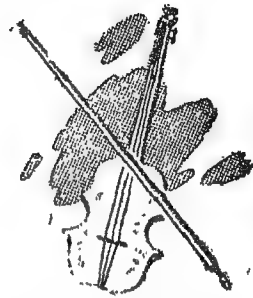
कई दिनों तक विकल के मस्तिष्क में राजीव के शब्द घूमते रहे। "मैं इन सब को ठीकरे की तरह ठुकरा कर कर्म में रत हो जाता!" और वह लगातार बेला बजाता रहा। हर समय उसके हाथों में बेला होता और वह राग में डूबा रहता। उसे शैल, संध्या, अमल, काका, दीदी किसी की याद न रहती, और जब कभी शैल या संध्या उसके मस्तिष्क को घेरने लगतीं तो वह प्रयत्न करके उन्हें बाहर कर देता। शैल उससे बात करना चाहती, तो वह रूखे और कुछ कठोर स्वर में मना कर देता, हंसना चाहती तो विकल की आँखें देखकर फूट पड़ने को हो आई हंसी बेबसी और रुलाई में बदल जाती। यह देखकर शैल को कितनी पीड़ा होती, यह उसके अलावा और कौन समझ सकता है।

दस-बारह दिन इसी तरह बीत गए। इस बीच विकल ने किसी से बात तक नहीं की। काका तो उसे समझा-समझा कर हार गए और अब उन्होंने कुछ कहना ही छोड़ दिया। बुलाया जाता, तो खाना खा लेता या मना कर देता। काका कुछ पूछना चाहते, अमल कुछ कहना चाहता, तो उत्तर ही नहीं देता, या देता भी तो बहुत संक्षिप्त—

'हाँ' या 'ना'। बस, आठों पहर एक ही लगन लगी रहती—व्यर्थ के जाल में पड़ कर छः महीने खो दिये हैं, अब एक पल भी व्यर्थ नहीं करेगा।

आख़िरकार शैल को यह स्थिति असह्य हो उठी, और एक दिन उसने साहस करके उसका दाहिना हाथ थाम लिया। ज़रा घिसट कर गज बेला के तारों से अलग हो गया।

"क्या है?" विकल ने कहा।

"आपको क्या हो गया है?"

विकल हंसा, बोला: "उन्माद।"

"ऐसा न कहिये," शैल चीख़ पड़ी। आँखें छलक आईं।

"फिर क्यों पूछती हो, क्या हो गया है? मैं बिल्कुल ठीक हूँ।"

शैल की आँखों में इतनी पीड़ा सघन सिमट आई थी कि और कोई समय होता तो विकल की आँखें बह उठतीं, पर उस समय उस पर कोई प्रभाव न पड़ा। निर्लिप्त बैठा रहा।

"फिर आप बोलते क्यों नहीं?" शैल ने कहा: "पहले की तरह बातें क्यों नहीं करते? हंसते मुस्कराते क्यों नहीं?"

"आदमी की ज़िन्दगी बहुत छोटी होती है," विकल ने उत्तर दिया: "और मैं अपने जीवन के अमूल्य छब्बीस वर्ष यों ही गंवा चुका हूँ। वक़्त बहुत कम है, और लक्ष्य दूर है।"

विकल का स्वर एकदम भावहीन और सम था, जैसे ग्रामोफ़ोन-रिकार्ड बज रहा हो।

ज़रा देर चुप रहने के बाद शैल बोली: "मेरा अपराध क्षमा नहीं हो सकता?"

"कौन सा अपराध?"

"जिस कारण आप क्रोधित हैं। आप इच्छानुसार संध्या के यहाँ जाइये, मैं कभी एक शब्द भी उस विषय में नहीं कहूँगी। बस, एक

प्रार्थना है। इस तरह अलग-अलग रहकर घर को. . ."

विकल हंसा : "कह चुकीं?"

"हाँ।"

"तो अब मुझे बजाने दो। जाओ, तुम भी कुछ काम करो।"

"क्या करूँ?"

"और कोई काम न हो, तो मेरे दुर्भाग्य पर आँसू बहाओ।"

शैल के बहुत रोकने पर भी आँसुओं का भार हलका नहीं हुआ, तो वह विकल के सामने से हट गई। फफक उठी। एक क्षण को विकल का ध्यान उस तरफ़ गया और दूसरे क्षण बेला के तारों से 'जयजयवन्ती' फूट पड़ी।

दोपहर ढल गई तो उठा, और धीरे-धीरे चलकर संध्या के कोठे पर पहुँचा। संध्या अन्दर थी और एक दासी बाहर के कमरे में बैठी थी। विकल ने उससे कहा : "संध्या जी से कहो कि विकल आये हैं।"

दासी अन्दर चली गई और लगभग पन्द्रह मिनट बाद संध्या बाहर आई और विकल को आश्चर्य हुआ कि हमेशा की तरह संध्या उसे देख कर खिल नहीं उठी, बल्कि गंभीर और कुछ रूखे स्वर में बोली : "कहिये, कैसे आना हुआ?"

विकल स्तब्ध रह गया। कुछ क्षण तो उसे यही निर्णय करने में लग गये कि यह संध्या ही है या कोई और। फिर थोड़ी देर उसे ध्यान से देखने के बाद बोला : "आपने शायद मुझे पहचाना नहीं।"

"नहीं मैं, आपको अच्छी तरह पहचान गई हूँ।" संध्या ने उत्तर दिया : "कैसे आना हुआ इस समय?"

"इस समय?" विकल ने दोहराया।

"हाँ। यह वक्त मेरे आराम करने का है और मुझे यह बिल्कुल पसन्द

नहीं कि कोई मेरे आराम में खलल डाले ।"

"मुझे दुःख है । मैं समझता था, मेरे लिये आपके पास सदा समय रहता है ।"

"वहम की दवा तो हकीम लुक़मान के पास भी न थी ।"

विकल अविश्वास भरी दृष्टि से संध्या को देख रहा था । विश्वास करना बड़ा कठिन था कि यह संध्या है । उसने कहा : "मैं बड़ा शर्मिन्दा हूँ कि मैंने आपका वक्त बरबाद किया । आप आराम करें ।"

"शुक्रिया ।"

"पर जाने से पहले एक सवाल पूछना चाहता हूँ । आप में यह परिवर्तन कब से हो गया ?"

बहुत क्रोध से संध्या ने कहा : "आपको तमीज़ से बात करनी चाहिये ।"

"मुझे दुःख है ।"

वह जाने को मुड़ा । उसका मस्तिष्क खट-खट बजने लगा था ।

"सुनिये ।"

वह रुका । मुड़ा । संध्या और उसकी आँखें मिलीं । एक क्षण के लिये संध्या की कठोरता तिरोहित हो गई । विकल ने कहा, कोमल, कम्पित, अनुरोध पूर्ण स्वर में : "संध्या, तुम्हें क्या हो गया है ?"

संध्या के होठ हिले, पर दूसरे ही क्षण स्थिर हो गये । आँखों में फिर कठोरता आ गई । अभी पर वह बोली : "आपको मैं अच्छी तरह जानती हूँ और आप जैसे व्यक्तियों से मुझे नफ़रत है । मेहरबानी करके आप कभी यहाँ आने की तकलीफ़ न किया करें, नहीं तो मुझे बुरी तरह पेश आना पड़ेगा ।"

"संध्या !" विकल चीख़ पड़ा ।

"अब आप जा सकते हैं ।"

विकल धीरे-धीरे चलकर सीढ़ियों से नीचे उतर गया । गली में रुककर

एक बार उसने मकान की ओर देखा और तब चल पड़ा।

और उसके जाते ही संध्या फफक कर रो पड़ी।

क्या हाड़-माँस के इसी पुतले का नाम नारी है, धीरे-धीरे लटपटाता चलता विकल सोच रहा था, क्या ऐसी ही नारी को माँ-अन्नपूर्णा-देवी कहा जा सकता है? आख़िर उसने संध्या का क्या बिगाड़ा था, रूपहाट में पैर रखने वाले दूसरे आदमियों की तरह वह कभी उसके रूप और शरीर की ओर भी तो आकर्षित नहीं हुआ था। वह संध्या से थोड़ा-सा स्नेह पाना चाहता था और उसे थोड़-सा स्नेह, थोड़ी-सी सहानुभूति देना चाहता था। संध्या ने उसे स्नेह दिया तो लेकिन देकर कितनी निर्दयता से सहसा छीन लिया! क्यों, आखिर क्यों?...एकाएक संध्या को यह क्या हो गया? क्यों उसने उसे दुतकारा, क्यों राह चलते उचक्के, उठाईगीर की तरह झिड़क दिया?

सहसा याद आया कि पिछली बार जब उसके वह यहाँ गया था तो उसने कहा था: "विकल बाबू, अगर आप ख़ुद मेरे यहाँ आना बन्द न करेंगे तो मैं आपके लिये यहाँ का द्वार बन्द कर दूँगी।" तो संध्या यही कर रही है। पर भला क्यों? इसलिये कि पति-पत्नी में सुलह हो जाये? शैल और उसमें? असम्भव। शैल विकल के बेला को घृणा करती है और अपने बेला से घृणा करने वाले व्यक्ति को विकल कभी प्यार नहीं कर सकता।

उसने रिक्शा नहीं किया। धीमे कदमों चलता रहा। जब घर के सामने पहुँचा तो साँझ हो गई थी। सड़कों पर बिजली के बल्ब जल उठे थे और घरों में हैसियत के मुताबिक बिजली के बल्ब या मिट्टी के तेल के चिराग़। मन बड़ा भारी हो रहा था। सीधे घर जाने की इच्छा न हुई। कमला नेहरू रोड पर बड़ी दूर तक चला गया, फिर थार्नहिल रोड पर मुड़

कर, फ़ोर्ट रोड पर चलने लगा। लगा, आज उसका घर इतनी दूर हो जाए कि चलते-चलते ही सारा जीवन बीत जाये। मालवीय रोड पर मुड़ा और घर के सामने पहुँच गया। हौले से फाटक खोला, बाहर के बरामदे में पहुँचा। अन्दर से आती अमल की आवाज़ सुनाई पड़ी। वह कह रहा था : "मुझे किसी चीज़ का, विशेषकर धन का—अभाव तो कभी मालूम ही नहीं हुआ। कैसे मालूम होता—अभाव में ही तो सारा जीवन बीता है। परन्तु एक की आकांक्षा सदा बनी रही—स्नेह की। जिस वातावरण में रहा, उसमें तनिक भी स्नेह न था। माता-पिता का वात्सल्य तो पा नहीं सकता था, उसके लिये कभी कल्पना भी नहीं की। मेरा हृदय सदा ऐसे व्यक्ति के लिये तरसता रहा जिसके समीप बैठकर मैं रो सकूँ, हँस सकूं, दुःख में सान्त्वना के दो बोल सुन सकूं और सुख में आगे बढ़ने की प्रेरणा पा सकूं। विकल मिला, सहसा ही समीप चला आया। उसका स्नेह मिला, पर मेरा हृदय सन्तुष्ट न हो सका, तृष्णा बनी ही रही। विकल के पास आया तो दीदी, काका और आपके व्यक्तित्व की झलकियां देख सका। मन की प्यास और तीव्र हो उठी। साढ़े पाँच वर्ष पहले आपने विकल के और साथ ही मेरे जीवन में प्रवेश किया था। मुझे क्षमा कीजियेगा, शैल जी, पर आज मैं बिना कहे रह नहीं सकता। आपको देखते ही मैं आप की ओर आकर्षित हो गया। ज्यों-ज्यों आपके व्यक्तित्व से मेरा परिचय घनिष्ठ होता गया, मैं आपको प्रेम करने लगा..."

"अमल जी!" शैल व्यथित-सी चीख पड़ी।

"हां, शैल जी, मैं आपको प्रेम करने लगा। मुझे लगा मेरी तृषा बुझेगी।" वह रुका, तब स्वर विषादमय हो उठा : "पर वह अनुभूति कसक बनकर ही रह गई। मुझे मालूम हुआ कि आप मेरी नहीं, विकल की ओर आकर्षित हैं, और उसे प्रेम भी करने लगी हैं। कितनी पीड़ा मुझे पहुँची, यह मैं ही जानता हूँ, पर..."

"अमल जी!" शैल फिर चीखी।

अमल के शब्द विकल के मस्तिष्क में हथौड़े से पड़े। वह चुपचाप सीढ़ियों से उतर कर, फाटक खोल, फिर सड़क पर चला गया।

"अमल! अमल!" वह बुदबुदाया: "मैं तुम्हें ऐसा नहीं समझता था! मैं तुम्हें ऐसा नहीं समझता था।"

रक्तचाप बहुत बढ़ गया। लगा, और बढ़ा तो स्पन्दन ही थम जायेगा।

"अमल!" वह फिर बुदबुदाया: "तुम्हें मैं कुछ और समझता था, साधारण आदमी से बहुत भिन्न, बहुत ऊपर!"

वह लक्ष्यहीन सा आगे बढ़ता चला गया। किस ओर...किसी भी ओर...कोई अन्तर नहीं...क्या दिशा का ज्ञान आवश्यक है?...सहसा मुट्ठियाँ बँध गईं और आंखें जल उठीं। बोला: "अमल, तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मैं तुम्हारी हत्या कर दूँगा।"

सहसा वह रुका। उसके मन में चुपके से कोई कह गया: अमल दोषी नहीं, शैल ने भी तो उसे प्रोत्साहन दिया होगा।

उसकी बंधी हुई मुट्ठियाँ खुल गईं और आंखों की आग उफनते पानी में बुझ गई।

बहुत धीमे स्वर में उसने कहा: "राजीव, तुम ठीक कहते थे—नारी छलना है, प्रवंचना है, और है पुरुष की सम्पूर्ण शक्ति हरण कर लेने वाली दानवी!"

"अमल जी!" शैल चीखी।

अमल रुका नहीं, कहता गया : "हां शैल जी, यह जानकर मुझे कितनी पीड़ा पहुँची, उसका अन्दाज़ा भी आप नहीं लगा सकतीं। पर मैंने कभी किसी पर यह प्रकट न होने दिया। विकल से आपका विवाह हो जाने से मेरे मन-मस्तिष्क को कैसा आघात लगा यह भी किसी को भान न हो सका। आज पहली और आख़िरी बार मैं आपके सामने अपने मन का ग़ुबार निकाल रहा हूँ। इस ग़ुबार से मैं घुट रहा था, आप से कह लेने के बाद शायद कुछ आराम से रह सकूं।

"शैल जी, मैं आप से तब भी प्रेम करता था, अब भी करता हूँ, और मृत्यु-पर्यन्त करता रहूँगा। आपके सुख में मेरा सुख है। इसीलिये मैं ने विकल को वहाँ जाने से मना किया।"

"क्यों मना किया आपने?" शैल ने कहा : "मैंने ही उनसे कहा था कि आप वही कीजिये, जिसमें आपको सुख हो।"

"पर मैं नहीं सहन कर सकता था कि आपको किसी प्रकार की तकलीफ़ हो। विकल ने मेरा कहना न माना, तो मैं उस वेश्या के यहाँ

गया। पूछा : 'आपका नाम ही संध्या बाई है ?'

" 'जी हां !'

" 'मैंने सुना है कि आपके यहाँ विकल नाम का एक युवक बहुधा आया करता है ?'

" 'जी हां, क्यों ?'

" 'मैं आपसे प्रार्थना करने आया हूँ कि आप उसे अपने फंदे से निकल जाने दीजिये।'

" 'क्या मतलब आपका ? मैं समझी नहीं।'

" 'वेश्या होकर मेरा मतलब नहीं समझीं ?' मैंने तिक्त स्वर में कहा : 'मैं जानता हूँ कि आप मेरा मतलब अच्छी तरह समझ गई हैं। आपने तो अपने चंगुल में बहुतों को फांस रक्खा होगा, एक विकल न रहेगा तो भी आपको नुकसान न होगा। और विकल आपके यहाँ न आया करेगा तो उसका जीवन बन जायेगा।'

"उसकी आंखें भर आईं। मैं कहता गया, 'आप वेश्या हैं सही, पर आपको यह नहीं भूलना चाहिए, कि आप वेश्या होने से पहले नारी हैं। दूसरी नारी की पीड़ा आपको समझनी ही होगी। इसके अतिरिक्त विकल की मुक्ति के बदले में आप जितना भी धन चाहेंगी...'

"वह रो पड़ी। रोते-रोते उसने कहा : 'मैं क़सम खाकर कहतीहूँ कि कभी उन्हें इस घर में कदम भी नहीं रखने दूँगी।'

" 'शुक्रिया। इसके बदले में आप कितना धन चाहती हैं ?'

" 'आपने मुझे याद दिलाई है कि मैं भी नारी हूँ।'

"रोकर वह भीतर चली गई। मुझे लगा कि अब कभी विकल उसके यहाँ नहीं जाने पायेगा। और शैल जी, वह जायेगा ज़रूर लेकिन अपमानित वापस आयेगा तो उसे आपके अंचल के अतिरिक्त और कहीं स्थान न मिलेगा।"

"अमल जी।" उच्छ्वसित हो शैल ने कहा। आंखें बह निकलीं।

न जाने कितनी देर तक विकल विक्षिप्त-सा निरुद्देश्य फिरता रहा। घर वापस जाने का मन ही न था! एक घंटा अल्फ्रेड पार्क में बैठा रहा, तब उठकर पैदल सिविल-लाइन्स चल पड़ा। 'रामाज़' में जाकर एक पेग 'रम' लाने का आर्डर दिया।

मस्तिष्क फटा-सा जा रहा था और स्पन्दन बहुत बढ़ गया था। अमल और शैल! ठीक कहता था राजीव : "मानव-चरित्र इतना बोधगम्य होता ही कब है?"

बहुत व्यथित हो उठा। उसे याद आया, 'शरत' के 'देवदास' ने शराब में अपना दुःख डुबा देने का प्रयत्न किया था। क्यों न वह भी यही करके देखे? और वह 'रामाज़' पहुँचा।

बेयरा ने 'रम', बर्फ़ और सोडा लाकर मेज़ पर रख दिया। बर्फ़ और सोडे को उसने तिरस्कार की दृष्टि से देखा—धीमे नशे में भी कहीं दुःख भूल सकेगा—और 'रम' का गिलास उठा लिया। एक-दो मिनट अंगुलियों के बीच थमे शीशे के गिलास को अनुरक्ति से देखता रहा, तब एक बार में ही गले से नीचे उतार गया। गले में बहुत जलन मालूम

पड़ी, जिसका वह अभ्यस्त नहीं था।...अब हो जायेगा...

उसके कहने पर बेयरा ने एक प्लेट आलू के चिप्स ला रक्खे। धीरे-धीरे एक-एक कुतर-कुतर कर उन्हें खाने लगा।

कुछ देर पश्चात् 'रम' ने अपना प्रभाव दिखाया, तो विचार अपने आप उसके मस्तिष्क में प्रवाहित होने लगे। राजीव ठीक ही कहता था। उसने सचमुच दुनिया देखी है और बहुत कठोर अनुभव उसे प्राप्त हुए हैं।...

"मनुष्य कब अपने को पूरी तरह जान सका है? भविष्य के गर्भ में उसके लिये क्या है, यह भी कब उसे पहले से पता रहता है? और वास्तव में इसी कारण तो जीवन जीवन है, रहने योग्य है, नहीं तो उसमें रह ही क्या जाय? 'मिस्टरी', 'सस्पेन्स', 'सरप्राइज़' यही तो है मानव-जीवन!"

"नारी छलना है, प्रवंचना है, और है पुरुष की सम्पूर्ण शक्ति हरण कर लेने वाली दानवी!..."

"यह जाति वास्तविक जीवन में जितना नाटक कर सकती है, उतना शायद कोई नहीं कर सकता। और उसका अभिनय हम सच समझते हैं!..."

"...यह दुनिया उतनी सरल, अकृत्रिम, सच्ची नहीं है, जितना तुम सोचते हो।..."

ठीक कहता था राजीव! मनुष्य कभी खुद को पूरी तरह नहीं जान सका है। वह स्वयं अपने ही बारे में क्या जानता था? नारी को सदा ही

वह पूज्या समझता रहा, परन्तु अन्त में वह सिद्ध वही हुई, जो राजीव ने कहा था। शैल बरसों उसके साथ नाटक करती रही और संध्या ने सहसा ही उसे एक ठोकर लगाई, जब वह उसके लिये बिल्कुल असावधान था। सचमुच दुनियां उतनी सरल, अकृत्रिम, सच्ची नहीं है !

बेयरा को एक पेग का आर्डर और दिया। और आने पर एक ही बार में उसे भी पी गया।

संध्या ! संध्या ने क्यों उसे ठुकराया ? क्या वह भी अभिनय ही कर रही थी ? क्या उसे उसकी कला के प्रति नहीं, उसके धन के प्रति आकर्षण था ? धन !...याद आया कि हर बार जब वह संध्या के यहां जाता था तो समय का मूल्य—कुछ रुपये ज़रूर देकर आता था।......समय का मूल्य !...अपनी ही मूर्खता पर मुस्कराया। वेश्यायें शायद अपने शरीर रूप और यौवन के मूल्य के अतिरिक्त और किसी वस्तु का मूल्य नहीं चाहतीं। और वह उसे समय का मूल्य देता था ! अब उसे अधिक कीमत देने वाला कोई मिल गया होगा !

ज़रा तेज स्वर में उसने पुकारा : "बेयरा, बिल !"

बिल आया, तो बिना देखे दस रुपये का एक नोट तश्तरी में फेंक कर उठ खड़ा हुआ। सड़क पर पहुँच एक रिक्शे वाले को चौक चलने को कहकर उस पर बैठ गया।

घंटाघर के सामने रिक्शा रुका। उतर कर किराया भरा और तेज़ी से संध्या के कोठे की ओर चल पड़ा। रास्ते में उसे घंटाघर की घड़ी के दस बजाने की आवाज़ सुनाई पड़ी। जिस समय उसने कमरे में पाँव रक्खा, फ़र्श पर बिछी कालीन पर कई व्यक्ति गावतकियों के सहारे बैठे थे, संध्या एक ग़ज़ल गा रही थी और साजिन्दे साज बजा रहे थे। संध्या के एक-एक हावभाव पर, उसके कंठ से निकल एक-एक कड़ी पर उपस्थित व्यक्ति झूम उठते थे। विकल पहुँचा तो उसकी लाल, चढ़ी हुई आंखें और एक दम परिवर्तित आकृति देखकर संध्या एक क्षण को रुक गई।

साजिन्दों ने आश्चर्य एवं आतंक से उसे देखा और अभ्यागतों ने संध्या और फिर विकल की ओर दृष्टि फेरी।

मुस्कराकर विकल कालीन पर बैठ गया। संध्या स्वयं को संयत करके फिर गाने लगी।

ग्यारह बजते-बजते एक-एक करके सारे आदमी चले गये। केवल विकल बैठा रहा। साजिन्दे भी उठ गये। केवल विकल बैठा रहा।

"आप यहाँ क्यों बैठे हैं?" संध्या ने रूखे स्वर में पूछा।

"आज की रात यहीं रहूँगा, शमा बाई!" विकल का स्वर लड़खड़ा रहा था। संध्या जान गई, वह शराब पीकर आया है। सिहर उठी। ज़ोर से बोली: "आप चले जाइये यहां से।"

"क्यों?" विकल हंसा: "मैं रुपये लेकर आया हूँ, शमा बाई!"

"विकल बाबू!" संध्या चीखी।

"रुपये के लोभ में आकर ही तो दोपहर में तुमने मुझे दुतकारा था?" विकल कहता गया: "मुझ से अधिक पैसा किसी से मिलने लगा होगा? कितना देता है वह? जितना वह देता है उससे दस गुना मैं तुम्हें दूंगा..."

"विकल बाबू!"

"सच, शमा बाई! मैं रुपये लेकर आया हूँ। पर एक बात समझ लो, समय का मूल्य नहीं दूंगा, शरीर का, रूप का, जवानी का मूल्य दूंगा—इतना जितना कभी तुम्हें न मिला होगा।"

"विकल बाबू!" संध्या का स्वर कांपा और शरीर सिहरा।

"कितने रुपये लोगी? औरत! रंडी!" विकल गरज पड़ा: "विकल बाबू, विकल बाबू! मर गया विकल बाबू! कितने रुपये लेगी, बोल नीच, कमीनी!"

आगे बढ़कर उसने संध्या को हाथ में जकड़ लिया।

संध्या ने उसके कठोर बंधन से छूटने का भरसक प्रयत्न किया, पर

सफल न हो सकी।

"मैं तुझे रुपये दूंगा, रुपये की दासी !" विकल चीखा : "मैं तुझे रुपये दूंगा।..."

संध्या के कोठे से उतर कर विकल नशे में ज़ोर से गा पड़ा : "महफ़िल में जल उठी शमा, परवाने के लिये !..."

फिर अपने आप बोला : "राजीव, तुम ठीक कहते थे। नारी केवल छलना है, प्रवंचना है। और कुछ नहीं। आओ, तुम्हारे पैर छू लूं।"

दो बजे रात घर पहुँचा। शैल उसकी प्रतीक्षा में जग रही थी। उसकी ओर बिना ध्यान दिये विकल बिना कपड़े बदले चारपाई पर लेट गया।

"सुनिये !" शैल ने कहा। विकल उसकी ओर देखता तो उसे मालूम हो जाता की शैल अभी थोड़ी ही देर पहले तक रोती रही थी। परन्तु विकल ने न तो उसकी ओर देखा और न कुछ उत्तर ही दिया।

"आप कहाँ गये थे ?" शैल ते सहमे स्वर में साहस करके पूछा।

"नर्क में।" विकल ने कठोर स्वर में कहा। वह अब भी उसकी ओर न देख रहा था।

ज़रा देर चुप रहने के बाद शैल ने कहा : "क्या मैं इतनी बड़ी अपराधिनी हूँ कि आप प्रेम के दो बोल भी मुझ से नहीं बोल सकते ?"

विकल चुप रहा।

"खाना खा लीजिये।"

"भूख नहीं है।"

"आपके लिये मैं भी अभी तक बैठी रही हूँ। खा लीजिये न !"

शैल के स्वर में बहुत आग्रह था। लेकिन विकल पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। जी में आया कह दे, 'क्यों नहीं खा लिया, अमल तो आया था ?' पर कह केवल इतना ही सका : "तुम खा लो। मैं नहीं

खाऊंगा।" विकल यथासम्भव अपने स्वर को साधारण बनाये रखने की कोशिश कर रहा था, किन्तु उसमें से अलग न हो सकने वाली रुक्षता और उदासीनता शैल के मानस में सौ-सौ कांटों के समान चुभ रही थी।

"कॉफ़ी पियेंगे?" एक बार फिर शैल ने साहस किया।

"नहीं!" विकल क्रोध से बोला : "बार-बार कहा नहीं खाऊंगा, नहीं पिऊंगा। मत परेशान करो मुझे।"

शैल के हृदय को चोट लगी। लाल आंखें फिर छलछला उठीं। संयत करके विकल के पास गई। कुछ कहने ही वाली थी कि उसके मुख से निकलती एक गंध उसके नासापुटों में भर गई। एक पग पीछे हटकर बोली : "आपने शराब पी है?"

कठोर स्वर में विकल ने उत्तर दिया : "हां, पी है। तो?"

कुछ न कह कर शैल हट गई और फूट-फूट कर रो पड़ी।

विकल कुछ देर तक उसे रोता हुआ देखता रहा, तब बुदबुदाया : "मायाविनी, तुम्हारे नाटक का कोई प्रभाव अब मुझ पर नहीं होने का!" और करवट बदल कर सोने की कोशिश करने लगा।

सुबह उसे घर में किसी ने नहीं देखा। दोपहर और शाम बीत जाने पर भी वह लौट कर नहीं आया। रात भर जाग कर शैल उसके लौटने की प्रतीक्षा करती रही पर उसे निराश होना पड़ा। रो-रो कर बेचारी ने आंखें सुजा लीं पर नतीजा कुछ न निकला। दोपहर आई और पोस्टमैन ने एक लिफ़ाफ़ा काका को दिया। शैल के नाम था। दौड़कर शैल ने उसे लिया। विकल की लिखावट देखकर बड़ी आतुरता और उत्कंठा से उसे फाड़ा।

पत्र में लिखा था :

"शैल,

"अब तुम्हें अपना अभिनय समाप्त कर देना चाहिये, क्योंकि मुझे असलियत मालूम हो गई है। मैं जा रहा हूँ। कहां, अभी खुद नहीं जानता, परन्तु विश्वास दिलाता हूँ, वापस लौट कर नहीं आऊंगा। बेला, जिससे तुम घृणा करती थीं, लिये जा रहा हूँ। अब वह कभी तुम्हें दुःख देने नहीं आयेगा। तुम डॉक्टर अमल से प्रेम करती हो न, और अमल तुमसे? मेरे हट जाने से तुम दोनों के बीच की बाधक दीवार ढह जायेगी और तुम नये सिरे से फिर एक बार जीवन आरम्भ कर सकोगी। मुझे दुःख है कि मैं तुम्हें मानसिक क्लेश के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सका, पर मैं विवश था।

"मैं कहां जा रहा हूँ, अभी मुझे नहीं मालूम। चल पड़ा हूँ तो कहीं न कहीं पहुँच ही जाऊंगा। पर विश्वास मानो, लौटकर नहीं आऊंगा। अमल के साथ तुम्हें नये जीवन का सुख तो मिलेगा ही—मैं जानता हूँ वह तुम्हारा बहुत ध्यान रक्खेगा—साथ ही मुझे भी लक्ष्य-प्राप्ति में सरलता होगी।

"अब बस। शुभ कामनाओं सहित

"विकल।"

पत्र पढ़ कर सहसा उसकी आंखों के आगे अंधेरा छाने लगा। लगा, अब गिरी, गिरी। कण्ठ से स्वर नहीं फूटा, नयनों से अनजाने ही आंसू बह निकले।

जिस समय पोस्टमैन ने काका के हाथ में लिफ़ाफ़ा दिया, लगभग उसी समय अमल के हाथ पर भी एक पोस्टमैन ने कई पत्र रख दिये। सरसरी दृष्टि से वह सब को देखने लगा। एक लिफ़ाफ़े पर दृष्टि अटक

गई। लिखावट विकल की थी। आतुरता से उसे खोल डाला। पढ़ने लगा :

"डाक्टर अमल,

"मैं जा रहा हूँ—कहां, मालूम नहीं—पर निकल पड़ा हूँ तो कहीं न कहीं सींग समाने को जगह मिल ही जायेगी। मेरी खोज करना व्यर्थ होगा, क्योंकि मैंने न मिलने की क़सम खा रक्खी है।

"मैं जा रहा हूँ, पर शैल तो घर पर ही रहेगी। मुझे विश्वास है मेरी अनुपस्थिति में तुमसे बढ़ कर और कोई संरक्षक उसका नहीं हो सकता। मेरा अनुरोध है कि उसे स्वयं से विलग न होने देना, यों मुझे मालूम है कि मेरी उपस्थिति में भी तुमने उसका खूब ख्याल रक्खा था। तुम्हारे पास रहकर, मुझे मालूम है, वह भी बहुत सुखी, प्रसन्न और सन्तुष्ट रहेगी। विश्वास है, मेरी अन्तिम प्रार्थना तुम अस्वीकार नहीं करोगे।

"विकल।"

पत्र पढ़ चुकने पर भी वह उसे देखता रहा। एक-एक वाक्य तीखा व्यंग था। थोड़ी देर बाद आंखें भर आईं और वेदना मिश्रित स्वर में वह बुदबुदाया : "विकल, तुमने मुझे समझा नहीं।"
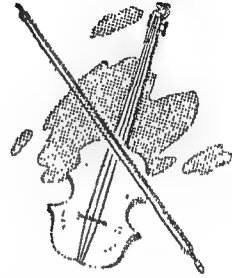
एकाएक विकल की दृष्टि अख़बार के 'व्यक्तिगत' कालम में प्रकाशित एक विज्ञापन पर जा पड़ी।

पटानकोट एक्सप्रेस के एक तीसरे दर्जे के डिब्बे में वह बैठा था और गाड़ी तेज़ी से अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती जा रही थी। उसके बग़ल में जो सज्जन बैठे थे उन्होंने गाड़ी चलने से पहले अख़बार ख़रीदा था, और अब उसी में डूब गए थे। आम तौर पर विकल को माँग कर पुस्तकें, पत्रिकायें अथवा समाचार-पत्र पढ़ना कतई पसन्द नहीं, लेकिन उस विज्ञापन विशेष पर एकाएक दृष्टि जब पड़ ही गई तो झुक कर उसे पढ़ने से स्वयं को रोक न सका।

लिखा था :

"विकल घर लौट आ। शैल बहुत बीमार है। अमल और काका पागल-से तेरी तलाश कर रहे हैं। फ़ौरन लौट आ, विकल। दीदी।"

[illegible]क्तियाँ पढ़कर मुस्कराया। ...तुम नहीं जानतीं, दीदी तुम कुछ नहीं जानतीं...शैल और अमल दोनों नाटक कर रहे हैं यह तुम नहीं जानतीं और इस नाटक का अन्तिम दृश्य जब समाप्त होगा तो तुम्हारी

आँखें फटी की फटी रह जायेंगी...तुम इतनी बड़ी ज़रूर हो मुझ से, लेकिन शायद आदमी को पहचानना तुम मेरे बराबर भी नहीं सीख सकीं...

अख़बार से उसकी दृष्टि हट गई और वह अतीत की घटनाओं की पुर्नस्मृति में खो गया।...शैल और अमल और उनके बीच में व्यवधान की तरह मौजूद विकल...अच्छा ही किया उसने जो वह खुद हट आया। किसी को सुख नहीं दे सकता तो दुःख देने का ही अधिकार उसे कैसे मिल सकता है? शैल उसके साथ दुःखी थी; अमल अगर उसे खुशी दे सकता है तो वह बाधा क्यों बने? उसने अपने मन और मस्तिष्क दोनों को भली प्रकार टटोल कर देखा लेकिन शैल अथवा अमल के प्रति तनिक भी कटुता नहीं थी...'तुम सलामत रहो हज़ार बरस, हर बरस के दिन हों पचास हज़ार'...

उसे केवल एक बात का दुःख था कि चलते समय राजीव से नहीं मिल पाया। ऐसी हड़बड़ी में शहर छोड़ा उसने कि राजीव से मिलने अथवा उससे कुछ पूछने या कुछ बताने की बात मन में आई ही नहीं। ...उसे याद आया कि एक बार जब वह बिना बताये कानपुर चला गया था और डेढ़-दो महीने बाद लौट कर आया था तो राजीव उसके बिना कितना परेशान रहा था और सूने घर में आ-आ कर निराश लौट जाया करता था...क्या इस बार भी वह विकल की अनुपस्थिति में घर आयेगा, यमुना के पुराने घाट पर प्रतीक्षा करेगा और व्यथित स्वर में कहेगा : "आज मेरी तृषा नहीं बुझाओगे?"

यह सोचकर विकल स्वयं बड़ा व्यथित हो उठा। एक राजीव ही तो ऐसा है जो उसे समझता है, जो उसे वक़्त ज़रूरत पर सलाह देता है, जिसकी वजह से ही वह अपनी ज़िन्दगी की राह निर्धारित करने में सफल हो पाया है। क्या कहता था राजीव? "विकल, तुम दो नावों पर सफ़र नहीं कर सकते" ...ठीक ही तो है, अगर उसने एक ही नाव पर

सफ़र करने का निश्चय न कर लिया होता तो 'जयजयवन्ती' में जो इतनी प्रगति आज कर सका है वह कभी भी न कर पाता...राजीव का आभार...नहीं, आभार की बात नहीं सोचनी चाहिए, राजीव कहता है कि वह किसी पर अहसान नहीं करता।

एकाएक विकल के मन में तीव्र लालसा जगी कि वह बेला बजाने लगे। अत्यधिक स्नेह से गोद में रखे बेला के केस को देखा और उसे खोला। बेला हाथ में लिया, गज तारों पर चला और डिब्बे में राग झंकृत हो उठा। एकाएक चौंक कर उसके सहयात्रियों ने उसे देखा। बातें बन्द हो गईं, क़हक़हे रुक गये, बगल में बैठे सज्जन ने अख़बार सीट पर रख दिया। तीसरे दर्जे के उस डिब्बे में सम्पूर्ण निस्तब्धता छा गई...आवाज़ें केवल दो आ रही थीं, रेल के पहियों की पटरियों पर चलने की खटखट और विकल के बेला का मधुर स्वर। लोग प्रस्तर-मूर्तियों से उसकी ओर देखते स्थिर रह गये...कैसा सम्मोहन, कैसा जादू है इन तारों में कि नीरस से नीरस व्यक्ति भी एक बार झूम जाये!

लेकिन विकल को इससे कोई मतलब नहीं था कि वह कहां है और किसके सामने बजा रहा है। वह तो जैसे अपने कमरे के एकान्त में था या यमुना किनारे के सुनसान में। बीसों आदमियों की उपस्थिति भी उसके लिए कोई महत्व नहीं रखती थी, उसके लिए तो वे जैसे थे ही नहीं। आंखें मूदें पूरी तन्मयता के साथ वह गज फेरता और अंगुलियां चलाता रहा।

कई स्टेशन आये और निकल गये। गाड़ी को न रुकना था, न रुकी। और इस सारे समय डिब्बे में उपस्थित किसी व्यक्ति के मुंह से आधा अक्षर भी नहीं निकला। तब विकल की आंखें खुलीं और एकाएक डिब्बे में बैठे हुए लोगों ने देखा कि वह बड़ी ख़ुशी से मुस्करा उठा और बजाना बन्द कर के उच्छ्वसित स्वर में बोला : "राजीव! तुम यहां कैसे, राजीव?"

राजीव मुस्कराया : "आश्चर्य क्यों, विकल ! एक बार तुम मुझे छोड़कर चले गये थे तो मैं तुम्हारे लिये परेशान होता रहा था क्योंकि मैं नहीं जानता था कि तुम कहां गये। लेकिन इस बार मुझे मालूम था कि तुम जाने वाले हो और मैं..."

"लेकिन तुम्हें कैसे मालूम था, राजीव, कि मैं जाने वाला हूँ ?" विकल ने पूछा।

राजीव हल्के से हंसा : "ख़त का मजमूं ..."

"भांप लेते हैं लिफ़ाफ़ा देखकर," विकल ने भी हंसते हुए मिसरा पूरा किया।

"लेकिन तुम जा कहां रहे हो, विकल ?"

"जहाँ गाड़ी ले जाये।"

"और जहाँ गाड़ी छोड़ देगी, उसके बाद ?"

"मोटर मिलेगी, घोड़े मिलेंगे और सबसे बढ़कर तो भगवान् की दी हुई दो टांगें अपने पास हैं।" फिर ज़रा मुस्करा कर उसने कहा : "फ़िलहाल तो श्रीनगर जा रहा हूँ !"

"ख़ूब !" राजीव ने कहा : "लेकिन अकेले कैसे ! तुम्हें तो शैल जी के साथ होना चाहिये था ?"

"देखो, राजीव," विकल ने एकाएक बहुत गम्भीर होते हुए कहा : "तुम इस तरह मुझ पर व्यंग मत करो। मैं जानता हूँ कि तुम मुझसे ज्यादा जानते हो, तुम ने मुझ से ज्यादा ज़िन्दगी देखी है, लेकिन अब तो मैं भी अनुभव कर रहा हूँ। तुम ने जो कुछ कहा था उसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। सच बड़ी तकलीफ़ है। इसलिए राजीव, भगवान् के लिए व्यंग न करो।"

राजीव ने स्नेह से उसका कंधा थपथपाया।

एकाएक विकल पूछ बैठा : "लेकिन चलती गाड़ी में तुम कहां से कूद पड़े ?"

राजीव हँसा। तब उसने उस डिब्बे को बग़ल के दूसरे डिब्बे से मिलाने वाले बीच के खुले दरवाजे की ओर देखा। समझ कर विकल ज़रा मान करने के स्वर में बोला : "तो फिर पहले क्यों नहीं मेरे पास आये? सैकड़ों मील का सफ़र बग़ल के डिब्बे में बैठे बैठे पूरा कर लिया और मेरे पास आये तक नहीं?"

राजीव ने स्वाभाविक स्नेहसिक्त स्वर में उत्तर दिया : "कहते हैं ज्यादा मिठाई में कड़ुवाहट आ जाती है। अभी तुमने बेला बजाया तो मैं अपने को रोक नहीं सका। थोड़ी देर में फिर चला जाऊँगा।"

"कहाँ?"

"तुम से अलग।"

"फिर आओगे तो?"

"ज़रूर।"

विकल ने संतोष से सर हिलाया, फिर कहा : "अच्छा बाबा, जाओगे तो चले जाना लेकिन भला यह तो बताओ कि तुम्हें हो क्या गया है। लगता है महीनों से बीमार हो।"

"वाह!" राजीव खुल कर हँसा : "जनाब, पहले शीशे में अपनी शक्ल तो देखिए। फिर मुझे कहियेगा।"

कुछ देर और विकल और राजीव इसी प्रकार बातें करते रहे। विकल को खुशी थी कि राजीव इस समय भी, इलाहाबाद से सैकड़ों मील दूर भी, उसके पास है कि उसे उत्साहित कर सके, आगे बढ़ने की प्रेरणा दे सके। यह राजीव, वह अपने मन में सोच रहा था, कितना अद्भुत व्यक्ति है, कितना प्यारा! और अमल उसे भ्रम कहता था और संध्या कहती थी कि राजीव मर चुका है।...मूर्ख!

"अच्छा, विकल, अब मैं चलूँ।" राजीव ने कहा : "फिर आऊँगा।"

"कब?"

राजीव हँसा : "यह न पूछा करो विकल, यह सवाल ही बड़ा बेमानी है।"

फिर एक बार और उसका कंधा थपथपा कर राजीव खुले दरवाज़े से दूसरे डिब्बे में चला गया। मन ही मन चाह,कर भी विकल उससे यह नहीं कह सका कि या तो तुम मेरे पास बैठो या मुझे अपने पास बैठने दो। राजीव का व्यक्तित्व ही कुछ इतना प्रभावशाली है कि उसके सामने वह कुछ कह ही नहीं पाता, बस जैसे उसके वश की बात इतनी ही रह जाती है कि आंख मूँद कर उसका कहना करता चले।

विकल राजीव से बातें करने में इतना मशगूल हो गया था कि अपने सहयात्रियों की ओर उसका ध्यान ज़रा भी न था। अभी थोड़ी देर पहले जो व्यक्ति उसके राग में डूब गये थे और मौन रहकर मन ही मन उसकी वादन-कुशलता की प्रशंसा कर रहे थे वे ही अब आपस में फुसफुसा कर धीमे स्वर में एक-दूसरे से कह रहे थे : "पागल है क्या यह आदमी?...जरा में हँसता जरा है में गम्भीर हो जाता है...जाने क्या क्या कहता है...। किस से बातें करता है...लेकिन बेला अच्छा बजाता है...हुनर है। भगवान कोई न कोई हुनर सभी को दे ही देता है।"...जितने मुँह उतनी बातें। कोई उसकी वेशभूषा की आलोचना करता तो कोई उसके दिमाग़ खराब होने का फ़तवा देता। लेकिन एक बात प्रत्येक में थी। एक अजब बेचैनी, एक विचित्र कसमसाहट उनमें थी। वे एक आतंक से उसकी ओर देख रहे थे। पागल तो नहीं लगता यह व्यक्ति, फिर भी पागल लगता है।

और विकल को इस से कोई मतलब न था। वह तो अपने में ही मस्त था और उस समय धीमे धीमे गुनगुना रहा था :

"मज़ा क्या आपको आता है इस ख़ानाबदोशी में..."

और वह बार बार दुहरा रहा था :

"ख़ानाबदोशी में...ख़ानाबदोशी में...मज़ा क्या आपको..."

कमरे का दरवाज़ा खोलते हुए मकान मालिक ने कहा : "आज करीबन तीन बरस बाद कमरा किराये पर उठ रहा है, बाबू साहब।"

"हूँ!" विकल ने कहा। उसे भला इस सूचना से क्या रुचि हो सकती थी कि कमरा कितने दिनों खाली पड़ा रहा।

"आप समझिये कि जो बाबू साहब पहले इसमें रहा करते थे वे बेचारे तपेदिक की भेंट चढ़ गए। उसके बाद किसी की हिम्मत इसे लेने की न पड़ी।"

"हूँ!" विकल ने कहा।

मानों मकान-मालिक को इससे कोई मतलब नहीं था कि श्रोता को उसकी बातों में कोई दिलचस्पी है या नहीं, वह तो बस लगातार बोले जा रहा था : "बेचारे बड़े भले आदमी थे। बस, ज़रा शराब बहुत पीते थे। तन्दुरुस्ती बड़ी खराब थी। मैं कहता इतनी शराब पीना ठीक नहीं बाबू साहब, तो मुस्करा कर रह जाते।...यह देखिये बाबू साहब, यह खिड़की जेहलम पर खुलती है। बैठे-बैठे शिकारे का नज़ारा देखिए।..." खिड़की खोल दी, नदी के निर्मल पानी पर तैरते तीन-चार शिकारे दीखे। उन

की बातचीत अबाधित जारी रही : "कभी-कभी मुझ से कहते, आइये भान साहब आपको एक नज़्म सुनाऊँ। और गाने लगते। बड़ी मीठी आवाज़ थी। अब इतना तो ख्याल नहीं कि क्या गाते, लेकिन बहुत अच्छा गाते।... यह बाज़ू वाली खिड़की देखिये। यहां से जेहलम का तीसरा पुल साफ़ नज़र आता है। वाह, क्या समां है?..."

विकल को जेहलम के तीसरे पुल से कोई सरोकार न था। उसे श्रीनगर से भी कोई सरोकार न था। वह तो बस चला आया। या यों कहो कि कोई उसे खींच लाया। कौन खींच लाया?...कौन जाने?...

"मुझे कमरा पसन्द है, भान साहब!" उसने कहा और छः महीने का किराया पेशगी देते हुए कहा : "मेरे पास पैसे कम हैं। अगर खर्च हो गये तो आपको परेशानी होगी, जो मैं नहीं चाहता। फिर अगर कभी एकाएक मेरा जाने का मन हो गया तो आपको कहां ढूँढ़ता फिरूँगा।"

भान साहब असमंजस में पड़े, लेकिन तब तक नोट उनकी हथेली पर पहुंच गये। तब वे अपने को संयत करके बोले : "मुझे खुशी है कि कमरा आपको पसन्द आया। आप समझिये कि तीन साल तो कोई इसे देखने तक नहीं आया! लेकिन मुझे कोई ग़म नहीं। बेचारे राजीव साहब, इतने भले आदमी थे कि..."

"राजीव साहब?" विकल ने चौंक कर पूछा।

"जी हाँ, राजीव साहब!" मकान मालिक बोले : "पूरा नाम उनका था राजीव आनन्द। वायलिन बजाते थे, साहब, कमाल का बजाते थे... आप उन्हें जानते हैं क्या?...हज़ार बार मैंने उनसे कहा कि ऐसा हुनर पास रहने पर भी आप यहां क्यों पड़े हैं, अरे साहब, बम्बई चले जाइये, फ़िल्म लाइन में और लाखों रुपये कमाइये। इस पर वे मुस्कराते और कहते, भान साहब आप समझेंगे नहीं। अब भला आप ही बताइये बाबू साहब कि इसमें न समझने की कौन सी बात है? कुछ ग़लत कहता हूँ?"

भान साहब ने शायद अपनी बात के समर्थन के लिए रुक कर विकल की ओर देखा।

"तो राजीव आनन्द की मौत इस कमरे में हुई थी ?" उसने जैसे अपने आप से कहा। लेकिन मकान मालिक ने समझा कि उनसे यह सवाल पूछा जा रहा है तो वे फ़ौरन बोले : "हां, बाबू साहब, इसी कमरे में हुई थी। भगवान न करे किसी की ऐसी मौत हो! जब मैं आया वे औंधे ज़मीन पर पड़े थे, खून जमीन पर और उनके चेहरे पर जम गया था और उस पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। एक तरफ उनका वायलिन पड़ा था और चारपाई पर एक ख़त मेरे लिए और एक किसी मुसम्मात के लिए। मेरे ख़त में लिखा था कि उनका वायलिन भी मैं उसी मुसम्मात के पास भिजवा दूँ। मेरा ख्याल है कि वह उनकी...भगवान उनको आत्मा को शान्ति दें। आप उनके दोस्त हैं। और कैसा इत्तफाक़ है कि यहां आकर आप भी उसी कमरे में ठहरे हैं जिसमें आपके दोस्त ठहरे थे..."

विकल विचारमग्न हो गया।

भान साहब—अपनी आदत से लाचार बेचारे!—आठ-दस मिनट के वार्तालाप—या अगर आप चाहें तो उसे एकालाप कह लें क्योंकि सुनने का काम विकल ने किया और बोलने का उन्होंने—के बाद "अच्छा, बाबू साहब, कोई काम हो तो मुझे याद करेंगे" कहकर चलने के लिए उठ खड़े हुए। जवाब में विकल ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया और सिर्फ़ "हां" कहा।

भान साहब दरवाज़े तक ही पहुँचे होंगे कि सहसा जैसे उन्हें कुछ याद आया और वे विकल के पास वापस लौटे। जैसे क्षमा याचना सी करते हुए बोले : "माफ़ कीजियेगा, बाबू साहब, मैं बातें करने में ही इतना खो गया कि आपका नाम पूछना तक भूल गया। असल में साहब, यही मेरी एक बहुत बड़ी कमज़ोरी है। अब इसके लिए चाहे मुझे कोई

अच्छा कहे या बुरा...”

“मेरा नाम विकल है, भान साहब !”

“शुक्रिया, शुक्रिया, विकल साहब ! मुझे बड़ी खुशी है कि आपने कमरे को आबाद तो किया। खुशी मेरी दोबाला हो उठी है क्योंकि आप उसी कमरे में आकर ठहरे हैं जिसमें आपके दोस्त ठहरे थे। और विकल साहब, बुरा मत मानियेगा, अगर एक अर्ज़ करूँ। आप अपनी सेहत गंवा कर यहाँ आये हैं। आपको देखकर बार-बार मुझे राजीव साहब की याद आ रही है। जब आये थे तो आपकी तरह सेहत बरबाद करके और जब गये...”

एकाएक ‘ठक’ से भान साहब रुक गये। फिर क्षण में स्वयं को सम्हालकर बोले : “अच्छा तो विकल साहब, अब मुझे इजाज़त दें। फिर कभी आपकी ख़िदमत में हाजिर होऊँगा।”

अभिवादन के बाद वे चले गये। विकल नदी पर खुलने वाली खिड़की खोलकर खड़ा हो गया।

•

नदी पर शिकारे तिरते चले जा रहे थे—छोटे, बड़े, मन बहलाव के लिये आये सैलानियों से भरे शिकारे—और विकल के मस्तिष्क में तिर रहे थे अनेकानेक विचार, पिछले दो-तीन बरसों में तेज़ी से घटी घटनायें, परिचितों के साथ हुए वार्तालाप, सब कुछ ; तिर रहे थे अबोधगम्य मानव चरित्र, राजीव, संध्या, शैल, अमल...पूरी ज़िन्दगी सिनेमा की रील की भांति तेज़ी से खुलती चली जा रही थी, केवल उसकी तरह क्रमबद्ध, सुसंगठित, सुसज्जित न थी...कभी कोई दृश्य आता, फिर कोई विचार, तब कोई घटना और सहसा कोई वार्तालाप। कहीं कोई क्रम नहीं। सर्वत्र विश्रृंखलता...विश्रृंखल ज़िन्दगी की विश्रृंखलता...

लेकिन वह टूटी। किसी ने कोमल स्वर में पुकारा : “विकल !”

स्वर विकल का पहचाना था। होठों पर अनायास हँसी फूट पड़ी।

मुड़कर बोला : "तुम यहाँ भी आ गये।"

राजीव मुस्कराया : "बुरा लगा क्या ? वापस लौट जाऊँ ?"

"बुरा क्यों लगेगा ? गाड़ी में जब तुम मेरे पास आये थे न, उसके बाद से मैं सोच रहा था कि अब जाने कब तुमसे मुलाकात हो।"

राजीव मुस्कराया : "ऐसा ?"

"हाँ।"

राजीव ने दृष्टि घुमा कर कमरे का निरीक्षण किया। तब बोला : "कमरा तो अच्छा है। पसन्द आया तुम्हें ?"

"हाँ, पसन्द आया। अब मैं कुछ दिनों शान्तिपूर्वक रह सकूँगा। लगता है सारा संसार जैसे पीछे छूट गया है। लेकिन तुम्हें कैसे पता चला कि मैं यहाँ हूँ।"

"जैसे और बहुत सी बातें पता चल जाती हैं।"

विकल कुछ कहने जा रहा था कि एकाएक उसे कुछ याद आया और वह बोला : "एक विचित्र संयोग हुआ है, राजीव, इसी कमरे में संध्या का राजीव आनन्द रहा करता था और यहीं उसकी मृत्यु हुई थी।"

"हां ?"

"अगर भान साहब इस समय आ जायें और तुम्हें देखें तो बेचारे बेहोश होकर गिर जायेंगे। शायद दिल की धड़कन भी बन्द हो जाय।"

"क्यों भला ?" राजीव मुस्कराया।

"वही भ्रम जो संध्या को है। एक बार फिर राजीव आनन्द को सशरीर देखकर उनके दिल की धड़कन नहीं बन्द हो जायगी ?"

दोनों हँसे।

ज़रा देर बाद विकल बोला : "कौन जानता था, राजीव, कि एक दिन मैं इस प्रकार घर छोड़ कर सैकड़ों मील दूर चला आऊँगा ?"

"सारी बातें पहले से ही मालूम हो जायें तो फिर जीने में मज़ा क्या रह जाये, विकल ?"

इसके बाद दोनों इधर-उधर की बातें करते रहे। उनकी बातों में संध्या, अमल, शैल सभी के प्रसंग आये। एक अजब-सी उन्मुक्तता दोनों के मस्तिष्क पर छा गई थी, मानों ज़िन्दगी की सारी परेशानियां इस घाटी में प्रवेश करने से पहले छोड़ आये हों। गुज़री जिन्दगी को देखने का परिप्रेक्ष्य ही एकदम बदल गया था। कोई घटना उन्हें साल न पा रही थी। जो बातें कभी विकल को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ी थीं और जिनकी वजह से वह कई-कई दिनों तक पीड़ा से विक्षिप्त रहा था वे सब अब उसे बिल्कुल नगन्य मालूम पड़ रहीं थीं। मज़ा आ रहा था यह सोच कर कि उन्हें इतना बड़ा वह तब कैसे मान लेता था। सुई की नोक की चुभन को बर्छे की फाल से लगा घाव समझना ?... ऐसा मालूम पड़ रहा था कि उसका सारा अतीत मूर्खताओं का पुंज रहा है। लग रहा था कि ज़िन्दगी जीने की ओर क़दम तो उसने राजीव से मिलने के बाद ही उठाया था। और महसूस हो रहा था कि अब इस शान्त, सुरम्य घाटी में वह पूरे मन प्राण के साथ अपनी साधना में रत हो सकेगा।

एकाएक बातें करते-करते विकल ने राजीव को ग़ौर से देखा तो अचकचा कर रह गया। तब स्वयं को संयत करके बोला : "तुम बीमार थे क्या ?"

"नहीं तो। क्यों ?"

"लगता है महीनों चारपाई पर रहने के बाद उठकर आये हो।"

राजीव हंसा और बात का जवाब हंसी में उड़ा दिया। तब बोला : "बेला नहीं बजाओगे आज ?"

"क्यों नहीं बजाऊंगा ?" विकल ने उत्तर दिया : "अभी लो।"
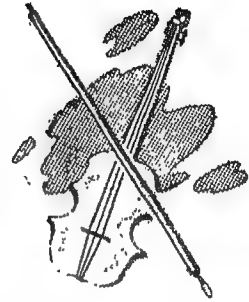
एक अजीब समां था, ज़िन्दगी का अजब ढर्रा था, नशा था, पागलपन था, अलमस्ती थी...कोई ग़म, कोई फ़िक्र, कोई गिला नहीं...ज़िन्दगी जैसे मौजें लेती पहाड़ी नदी थी, कभी न ख़त्म होने वाली तराना थी, जिसमें गहराइयां थीं, ख़ामोशी थी, बेहोशी थी...गरज़ यह जो बेफ़िक्री, जो सैलानीपन विकल की ज़िन्दगी में अब आया वह उसके लिये एकदम नया था, एकदम अछूता और वह उसमें ग़र्क हो गया, डूब गया, खो गया...ज़िन्दगी इतनी ख़ूबसूरत हो सकती है यह उसने इस पहाड़ी वादी में आने के बाद ही जाना...ऐसा हुस्न, ऐसे शफ़्फ़ाक नज़ारे उसने पहले कभी नहीं देखे थे...महसूस होता अब तक जो ज़िन्दगी उसने बिताई थी वह सचमुच में ज़िन्दगी नहीं, उसका प्रेत थी...प्रेत, जो असलियत नहीं, जिसकी कोई अहमियत नहीं...प्रेत-जीवन...लगता कितना खुशकिस्मत है वह जो उसे पीछे छोड़ आया...ऐसी खुशकिस्मती सब को नसीब हो सकती है क्या ?...ज़िन्दगी की नई धुन एकदम निराली है, सारे जहां की मिठास इसमें समोई हुई है, प्रकृति का सारा शबाब इसी में छलक रहा है...पहाड़ी नदी-सी कलकल छलछल करती मस्त ज़िन्दगी

...महसूस होता कि वह सब कुछ पा गया है...कोई आदमी अपनी पूरी उमर गवां कर भी जो कुछ हासिल नहीं कर पाता उसे वह इन तेरह महीनों में एकाएक सुलेमान के खज़ाने की तरह पा गया है...नहीं, पा नहीं गया है, यह खज़ाना एकाएक अपने आप उसके हाथों में आ गिरा है और अब वह बड़ी शान के साथ पूरी शान्ति और आत्मसंतोष के साथ आखिरी सांस ले सकता है...कोई ग़म नहीं, कोई फ़िक्र नहीं, कोई गिला नहीं...

तेरह महीने हो चुके थे उसे इलाहाबाद छोड़े हुए। तेरह लम्बे महीने, जो (विकल को महसूस हुआ) तेरह दिनों बल्कि तेरह घंटों की तरह कट गये। जिस समय ज़िन्दगी का सैलाब आता है तो फिर क्या समय की कोई अहमियत रह जाती है?...मुक्त जीवन...कोई बन्दिश, कोई ठहराव नहीं...सड़ांध नहीं, बदबू नहीं...चारों ओर स्वच्छन्दता, मन के भीतर और मन के बाहर हर तरफ़ पूरी आज़ादी...बेला बजाता तो सारी सुध बुध उसी में खो बैठता, कुछ याद न रहता...और क्यों याद रहता? क्या है आदमी की ज़िन्दगी में याद रखने लायक़?...वह मानो हर क्षण को जीता, हर पल का एक अलग अस्तित्व था और उसकी उमर का हर क्षण ज़िन्दगी से उफ़न रहा था, साक़ी के दिये हुए लबरेज़ प्याले की तरह...राजीव आता तो दोनों बातों में इतने मशगूल हो जाते कि समय की कोई सीमा न रह जाती...और जब यह सब कुछ भी न करता होता तो सस्ते शराबख़ानों में जाकर कच्ची शराब पीता...पीता, खूब पीता, पीता चला जाता। लेकिन उसके होश कभी ग़ायब न होते। मानो शराब उसके लिए अमृत बन कर आती...आंखों में एक अनोखी चमक आ जाती, मस्ती छलक पड़ती और वह फिर राग में डूब जाता...या फिर सस्ते दामों पर शरीर बेचने वाली वेश्याओं के यहाँ जाता...औरत, महज़ औरत है और कुछ नहीं, मत उस पर विश्वास करो, मत उसके लिये सर्द आहें भरो...वह इस काबिल नहीं...उसे सिर्फ़ पैसे की ज़रूरत है...हर

औरत पैसे के लिये अपना शरीर बेचती है...पैसा दो, शरीर लो ! सौदा खरा नक़द...वे वेश्यायें विकल को भली प्रकार जानती थीं। वह उनमें से हर एक का ख़रीदार था। अच्छी-बुरी, गोरी-काली कोई सवाल नहीं था उसके सामने...पागल की तरह किसी की कोठरी में घुस जाता...धीरे-धीरे नौबत यहां तक पहुँच गई कि वेश्याओं के लिए वह अपना ही आदमी हो गया। पैसे देने की ज़रूरत नहीं रही...कभी वेला बजा कर उन्हें सुनाता, या कभी गज़लें और शेर तरन्नुम से पढ़ने लगता (उर्दू शायरी उसका नया शौक़ था)...हर दम ज़िन्दगी की घुटन में रहने वाली, पेट भरने के लिये लगातार चौबीस घंटे शरीर का सौदा करने वाली औरतें इस पागल नौजवान को अपनी बस्ती का कोहनूर समझने लगीं... शराब के नशे में झूमता हुआ जब वह सड़क पर गाता हुआ निकलता

मिट चले मेरी उमीदों की तरह हर्फ़ मगर
आज तक तेरे ख़तों से तेरी ख़ुशबू न गई

या

मर गये हम आख़िर को इस तरह भी क्या जीते
ज़िन्दगी का हर लम्हा मौत का अफ़साना था

अथवा

थी यूँ तो शामेहिज्र मगर पिछली रात को
वह दर्द उठा 'फ़िराक़' कि मैं मुस्करा दिया

तो कोई भी वेश्या अपनी कोठरी से बाहर निकलती और उसे हाथ पकड़ कर घसीट ले जाती। कभी सरे आम किसी को चूम लेता तो कोई बुरा न मानती बल्कि खिलखिला कर हँस पड़ती और उसके गाल को प्यार से ठोंक कर कहती "सौदाई !"...गरज यह कि तेरह महीनों से विकल सचमुच ही ज़िन्दगी जी रहा था...हर क्षण को महसूस कर रहा था...गाता वह ज़रूर था 'ज़िन्दगी का हर लम्हा मौत का अफ़साना था' लेकिन मौत उसके आसपास कहीं न थी। वह ख़ुश था, पूरी तरह ख़ुश

परम्परा से चली आई सारी बन्दिशों से दूर...

लेकिन उसे मालूम नहीं था कि वह धीरे-धीरे खोखला होता जा रहा है। तेरह महीने पहले जो विकल था उसमें और अब के विकल में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। कश्मीर की वादी में रहता था लेकिन उस का रंग स्याह पड़ गया था, आँखें गढ़ों में धंस गई थीं, गाल पिचक गये थे, लेकिन उसे इसका कोई मलाल नहीं था। उसे मालूम ही नहीं था कि यह परिवर्तन उसमें हुआ है। वह तो इसी में मग्न था कि दुनिया और समाज की सारी बदगुमानियों से दूर था वह, ईर्षाओं से परे था, धोखों से मुक्ति पा चुका था। इससे अधिक उसे कुछ नहीं चाहिए था...

शुरू-शुरू के सात-आठ महीनों में लगातार अख़बारों के व्यक्तिगत कालमों में दीदी के दिये हुए विज्ञापन छपते रहते थे। "विकल, लौट आ। शैल बीमार है...घुल रही है...मौत की तरफ बढ़ रही है...बेचू काका तेरे लिये पागल जैसे हो गये हैं...अमल..." और जब जब यह विज्ञापन उसकी नज़रों में पड़ते तब-तब वह ठठा कर हँस पड़ता।... और कितना धोखा देना चाहते हो तुम लोग? क्या अभी पेट नहीं भरा? संतोष नहीं हुआ? बन्द करो यह विज्ञापन-बाजी। मैं नहीं आऊँगा? नहीं आऊँगा, सौ बार कह दिया नहीं आऊँगा। अख़बार फाड़ कर फेंक देता और फिर अपनी मस्ती में डूब जाता...'

कौन ले रहा है अंगड़ाई
आसमानों को नींद आती है

शराबख़ानों में कच्ची शराब पीता...वेश्यायें हाथ पकड़ कर अपनी बैठक में लिवा जातीं... बेला के तारों से जादू प्रवाहित होता...

और आख़िर उसे घर से निकले एक बरस बीतते-बीतते दीदी के विज्ञापन छपने बन्द हो गये। विकल ने संतोष की सांस ली। पुरानी ज़िन्दगी से नाता ही एकदम तोड़ डालना चाहता था वह। ये विज्ञापन उसके अतीत और वर्तमान को जोड़ने का काम करते थे। यही वजह है

कि जब विज्ञापनों का प्रकाशन बन्द हो गया, और विकल को विश्वास हो गया कि यह कड़ी भी अब नहीं रही, तो उस दिन उसने ख़ुशी में अंधाधुंध शराब पी और फिर एक वेश्या की कोठरी में रात गुजारने चला गया।

लेकिन आख़िर कब तक? टूटता हुआ बदन कब तक किसी की अलमस्ती का साथ दे सकता है? दिल में कोई ख़म न आया हो, जीने की प्यास बढ़ती जारही हो, लेकिन फिर भी शरीर साथ न दे...वही उसके साथ भी हुआ। गिरा, ऐसा गिरा कि कई दिनों तक अपनी कोठरी से बाहर न निकल सका। ज़ोर की खाँसी आई, सीने में असह्य दर्द हुआ, ख़ून का एक कतरा मुँह से बाहर निकला और वह निढाल होकर लेट गया। ज़रा सा स्वस्थ हुआ तो फ़र्श पर पड़े ख़ून के उस थक्के पर निगाह पड़ी जिस पर मक्खियों का एक गोल भिनभिना रहा था। हँसा...'तो अभी भी मेरे शरीर में ख़ून बाकी है?'...और तब इतने जोर से हँसा कि फिर खाँसी आई और फिर जिगर का एक टुकड़ा कट कर लहू के थक्के के रूप में नीचे गिरा और तब उसे होश न रहा...

जब आँखें खुलने के काबिल हुई...पता नहीं बेहोश होने के कितनी देर, घंटे दो घंटे, एक दिन या दो दिन बाद, तो उसने भान साहब को अपने ऊपर झुका पाया।

"विकल बाबू!" भान साहब ने धीमे स्वर में कहा।

विकल ने कुछ उत्तर देना चाहा लेकिन होंठ काँप कर रह गए, आवाज़ नहीं निकली।

"क्या हालत बना रखी है अपनी?" भान साहब ने फिर कहा: "कितनी बार कहा कि मत शराब पियो, मत रंडियों के पास जाओ, लेकिन मेरी बात को सुनो तब न। एक वह राजीव साहब आए थे, कहते-कहते ज़बान घिस

गई लेकिन खुदा के बन्दे ने कान तक नहीं दिया। और तुम...पता नहीं भगवान को क्या मन्जूर है? शायद मेरा यह कमरा ही इतना नसूड़िया है जो भी यहाँ आता है...विकल बाबू, मेरी बात का बुरा न मानना। मैं बहुत ज्यादा बोलता हूँ, सोचता कुछ नहीं। असल में भगवान ने सोचने को दिमाग़ ही नहीं दिया मुझे। लेकिन उठो, थोड़ा सा चल सकते हो कि नहीं मेरे साथ? डाक्टर के यहाँ चलो...छोटा आदमी हूँ न, छोटे डाक्टर के यहाँ ले चलूँगा। चल सकते हो कि उसे ही यहां लाऊँ..."

विकल के होंठों पर मुस्कान की एक छाया सी गुज़री। तब वह बोला : "डाक्टर वाक्टर को मारो गोली, भान साहब! मेरा डाक्टर तो केवल एक है, बुलाओगे उसे? जानते हो कौन है? या चलो मैं ही चला चलता हूँ। दवाई भी कोई ज्यादा कीमती नहीं है और मुझे तो यूं ही मिल जायेगी। डाक्टर अपना यार है ...।"

भान साहब विकल के इशारे को भली प्रकार समझ गये। उनके चेहरे पर बदहवासी की सफेदी उतर आई, जिसे देख कर विकल हँस पड़ा। बोला : "वाह, भान साहब, वाह! इसी हिम्मत से डाक्टर के यहां ले चल रहे थे मुझे...?"

"नहीं, विकल बाबू, मैं तुम्हें अब और शराब नहीं पीने दूँगा। यही पी पी के तो अपनी यह हालत कर डाली है..."

विकल हँसा और कमज़ोर हाथों से भान साहब के कन्धे थपथपाता हुआ बोला :

> मय सी हसीन चीज़ हो और वाक़ई हराम।
> मैं कसरते शकूक से घबरा के पी गया॥

वाक़ई भान साहब इस जिन्दगी में इस हसीन चीज़ को छोड़ नहीं सकता। अगर आप सचमुच मेरे हमदर्द हैं तो...."

"विकल बाबू..." भान साहब ने उसका विरोध करना चाहा लेकिन तब तक डगमगाता हुआ वह उठ खड़ा हुआ।

विकल पर जान छिड़कने वाली वेश्यायें उसका मुख चूमकर कहतीं : "सौदाई!"—किसी व्यंग अथवा परिहास से नहीं, बल्कि उसके प्रति अपने सारे प्यार और सौहार्द्र के वश में होकर—"इतनी शराब मत पिया करो, हां!"

'सौदाई' मुस्करा कर रह जाता।

भान साहब परेशान से बड़बड़ाते हुए कहते : "शराब छोड़ नहीं सकते, विकल साहब, तो कम तो कर सकते हो!"

'विकल साहब' के होठों पर हल्की सी मुस्कान आ जाती।

और राजीव? उसका कहीं पता न था। आठ सितम्बर को आखिरी बार मिला था। अपनी मित्रता की वर्षगाँठ की खुशी में विकल ने बेला बजाया था। राजीव खामोश सुनता रहा था। जाते जाते बोला था : "विकल, जयजयवन्ती पर अब तुमने पूर्णता प्राप्त कर ली है। तुम्हारे लिये आगे मेरी जरूरत नहीं रही..."

"क्यों नहीं रही तुम्हारी ज़रूरत?" विकल ने जवाब में कहा : "मुझे तुम्हारी ज़रूरत ज़िन्दगी भर बनी रहेगी।"

"लेकिन मैं तो ज़िन्दगी भर तुम्हारे पास नहीं रहूँगा," राजीव ने ज़रा हंस कर कहा : "देख नहीं रहे मेरी तन्दुरुस्ती? कौन जाने कब यह शरीर..."

विकल ने अपनी हथेली उसके मुंह पर रख दी : "ऐसी बातें नहीं कहते, राजीव।"

"न कहने से असलियत नहीं बदल जायेगी," राजीव ने कहा : "अपने और अपने शरीर के विषय में मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। मैं जानता हूँ कि मुझ में अब तनिक भी शक्ति शेष नहीं रह गई है। किसी भी समय...आज....अभी..."

परिचय और फिर अभिन्नता के प्रारंभ से ही विकल देख रहा था कि दिनों दिन राजीव का स्वास्थ्य ख़राब होता जा रहा है। अनेक बार

उसने राजीव से कहा भी था कि वह अपने खाने पीने का ध्यान रखा करे। लेकिन हर बार राजीव बस मुस्करा कर रह गया था। और इस समय तो राजीव जैसे स्वयं अपना प्रेत मालूम पड़ता था, कंकाल मात्र और उस पर चढ़ी हुई झुर्रियों भरी खाल। एक क्षण तो मन में आया कि इस प्रकार जीवित रहने से तो अच्छा ही है कि राजीव न रहे। लेकिन फिर स्वयं को कोसते हुए यह विचार मन से निकाल दिया।

कुछ और बातें करने के बाद राजीव ने विकल से विदा ली। वह दिन था और आज का दिन है कि राजीव फिर पास नहीं आया। कहां चला गया वह? क्या सचमुच मर गया? क्या अब वह विकल के पास कभी नहीं आयेगा?...लेकिन इन सवालों का जवाब देने वाला था कौन? जब जब ये विचार उसके मन में उठते तब-तब उसमें एक विचित्र नीरवता व्याप्त हो जाती। वैसे उसकी मस्त ज़िन्दगी उसी तरह चल रही थी। राजीव ने उसे जिस राह पर चलाया था उस पर वह बखूबी बढ़ता जा रहा था...और अगर एक छोटी-सी घटना न हो गई होती तो दिनों दिन क्षीण होते शरीर और अनजान में ही हर क्षण मौत के समीप पहुँचता जाने वाला विकल उसी पर बढ़ता चला जाता।...एक ऐसी घटना जिसने उसे जड़ से हिला कर रख दिया, झंझोड़ दिया...

एक रोज़ उसकी दृष्टि अख़बार के 'व्यक्तिगत कालम' पर जा पड़ी। अकस्मात। एक विज्ञापन था उसी के लिए। महीनों बाद यह विज्ञापन :

"अब तेरी आत्मा को शान्ति मिल जायेगी, विकल। ज़रूर मिल जायेगी। अब तक तेरी राह देखते रहने के बाद शैल अब चली गई है जहां से कोई वापस लौट कर नहीं आता। विवाह के अवसर पर मिली हीरे की अंगूठी उसका काल बन गई। खुश हो ले, अभागे, यही तो तू चाहता था न! दीदी!"

पढ़कर विकल सहसा संज्ञाशून्य खड़ा रह गया। कई क्षणों तक मस्तिष्क बिल्कुल खाली रहा, आंखें कुछ देखने में असमर्थ हो उठीं। सम्पूर्ण संसार शून्य हो उठा। तब एकाएक ज़मीन के भीतर मौजूद खौलते पानी-सा ऊपर की सख्त पर्तों को फोड़ कर खारा पानी आंखों में फूट पड़ा और वह तेज़ी से अपने कमरे की ओर भागा।

उसके पैरों के भागने की रफ्तार से हज़ारों गुना ज्यादा रफ्तार से भाग रहा था उसका मन। वर्तमान हर क्षण अतीत में घुलता जा रहा था। अनेकानेक मुद्राओं में शैल उसके सामने आ रही थी।...और अब शैल नहीं है...शैल नहीं है...क्यों नहीं है?...क्यों नहीं...क्योंकि विकल ने उसे मार डाला है...वह हत्यारा है...हत्यारा...

एक हाहाकार उसके भीतर भर गया। तन-मन का एक-एक अणु स्वयं को धिक्कारने लगा।...एक निर्दोष नारी का हत्यारा...

एक झंझा-सा बह रहा था...लग रहा था अपने हाथों अपना गला दबाकर शैल के पास जा पहुँचे...क्या अधिकार है उसे जीवित रहने का?...क्या...

कमरे का द्वार खुला था। हांफते हुए आंधी की तरह उसने भीतर प्रवेश किया तो नदी की तरफ़ खुलने वाली खिड़की पर बैठा राजीव बाहर का दृश्य देख रहा था। आहट पाकर घूमा तो बदहवास विकल को सामने पाया। मुस्कराया।

और राजीव को देखते ही विकल के मस्तिष्क में झटका लगा, जैसे बांध के फाटक खुल गये और पानी हहराता हुआ बह चला।...यही...यही...हां, हां...यही तो...

राजीव कुछ कहने ही जा रहा था कि विकल एकाएक फट पड़ा : "वह मर गई! सुना तुमने, वह मर गई! मेरे लिये मर गई!"

"कौन?" राजीव मुस्करा रहा था।

"कौन?" विकल मानो गरज कर बोला : "तुम नहीं जानते, कौन?

तुम्हारी वजह से यह सब कुछ हुआ, तुमने मुझे बरगलाया, तुमने मुझे उससे अलग किया और जब वह मर गई तो पूछते हो कौन ?"

वह रुक कर हांफने लगा।

राजीव अब भी उसी तरह मुस्कराये जा रहा था : "कौन, विकल, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।"

"मत भोले बनो, मैं तुम्हारी नस-नस पहचान गया हूँ!" विकल कहता गया : "तुमने मेरा दिमाग़ इस क़दर ख़राब कर दिया कि मुझे इतना भी याद न रहा कि परिवार के प्रति भी मेरे कुछ कर्त्तव्य हैं जिन्हें मुझे पूरा करना चाहिए। मुझे याद न रहा कि राग ही ज़िन्दगी नहीं है। और फिर मैंने संगीत का ही क्या दिया ? जयजयवन्ती अच्छी बजाने लगा तो क्या ? कौन-सा नयी रागिनी, कौन सी नई धुन निकाली ? किसी को कुछ नहीं दिया, कुछ नहीं और यह सब तुम्हारे कारण..."

"विकल !"

"मैं तुम्हें मार डालूंगा, तुम्हारा गला घोंट दूंगा"

और सचमुच झपट कर उसने राजीव का गला पकड़ लिया और उसे दबाने लगा। राजीव और विकल दोनों ही कमज़ोर थे, पर राजीव शायद विकल के मुकाबले का भी नहीं रह गया था।

विकल उसका गला दबाये जा रहा था और चिल्ला रहा था : "तुम मर जाओगे तब मैं शान्ति से फिर ज़िन्दगी शुरू करूंगा...शैल की मौत का प्रायश्चित करूंगा...सारी ज़िम्मेदारियों को निभाऊंगा...संगीत को... बदमाश, कमीने...."

एक से एक फ़ोश गालियां देते हुए उसने राजीव का गला इतने ज़ोर से दबाया और इतने ज़ोर से चिल्लाया कि राजीव लुढ़क कर एक ओर गिर गया और उसे खुद इतने जोर की खांसी आई कि...

दो दिन बाद भान साहब ने खुले दरवाजे के भीतर क़दम रक्खा तो

चौंक कर पीछे हट गये। आंखें मिचमिचाई और सिर को झटका दिया।

विकल फ़र्श पर औंधा पड़ा था। एक ओर टूटा-फूटा बेला बिखरा था और किसी अख़बार के पन्ने सब तरफ छितरे थे। भान साहब ने एक पन्ने पर झुक कर देखा, लिखा था :

धारावाहिक सत्य-कथा

बेला के तार

(प्रसिद्ध बेला वादक श्री राजीव आनन्द की जीवन कहानी)

इन पन्नों ने विकल के जीवन में कौन-सा तूफ़ान पैदा कर दिया था, यह भला भान साहब कैसे समझते ? हां, एक सघन पीड़ा अवश्य उनके मानस पर घिर आई।

"आप...आप भी, विकल बाबू !"

एक सर्द आह भरी। आंखों के कोनों पर दो बूंद आंसू...